नवनिका

2+2=4

शारदा पुस्तकालय
(संस्कृत विद्यापीठ)
क्रमांक 363

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. दा. केंद्र)
क्रमांक 363

चयनिका

(कक्षा ११-१२ के लिए हिन्दी काव्य की पाठ्यपुस्तक)

1. सार 2. पद्यांश 3. पार्श्वीय 4. दोहे 5. (शुद्ध 6. रिक्तस्थान)

363

हिन्दी पाठ्यपुस्तक संपादन-मंडल के सदस्य

डा० हरवंशलाल शर्मा (अध्यक्ष)

प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा	डा० नामवर सिंह
डा० प्रेमस्वरूप गुप्त	डा० योगेन्द्र सिंह
डा० गुणाकर मुले	डा० विजयेन्द्र स्नातक (सहयोजित)
श्री अनिल विद्यालंकार	डा० कृष्ण गोपाल रस्तोगी

श्री निरंजन कुमार सिंह (संयोजक)

चयनिका

कक्षा ११-१२ के लिए हिन्दी काव्य की पाठ्यपुस्तक

संपादक
नामवर सिंह

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली की अनुमति से
जम्मू तथा कश्मीर राज्य के विद्यालय शिक्षा मण्डल द्वारा प्रकाशित

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की अनुमति से अगस्त १९७७ में मैसर्स गोयल ब्रदर्स प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ था तथा राष्ट्रीय परिषद् की अनुमति से जून १९७८ में उन्हीं के द्वारा पुनर्मुद्रित हुआ था। इसके बाद के पुनर्मुद्रण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित किए गए हैं।

मई *1986*

10 T

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, १९७७

मूल्य : रु० 6.00

Published by The Secretary J & K State Board of School Education Srinagar / Jammu and Printed at Arcee Press, Pahar Ganj, New Delhi-55

आमुख

नवीन शिक्षा योजना की महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी बाह्य संरचना या गठन नहीं है, अपितु वह प्रयोजन एवं दृष्टिकोण है जो शिक्षा का संबंध राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ने पर बल देता है। इसी दृष्टि से परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर के विभिन्न शैक्षणिक विषयों के लिए पाठ्यक्रम एवं पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया है। उनके निर्माण में निम्नलिखित सिद्धान्तों का विशेष ध्यान रखा गया है :

१. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओं का समावेश जिनसे बालकों में राष्ट्रीय लक्ष्यों—जनतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय एकता—के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

२. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री भारतीय जीवन-परिस्थितियों—उद्योग, कृषि, समाजसेवा आदि तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हों और उसमें वांछित भावी विकास की दिशा भी परि-लक्षित हो।

३. पाठ्यपुस्तकें बालकों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ अभिवृत्ति विकास की दृष्टि से प्रेरणादायी सिद्ध हों, उनके द्वारा बालकों में स्वयं शिक्षा एवं अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जागृत हो और वे निर्धारित पाठ्य-विषय तक ही सीमित न रहकर विशद एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए विविध विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण की योजना तैयार की गई। इस कार्य को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने के लिए विभिन्न विषयों के संपादन-मंडल निर्मित किए गए, जिनमें राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों एवं अधिकारी विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया गया।

हिन्दी (मातृ-भाषा) भाषा एवं साहित्य के पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए भी एक उच्चस्तरीय संपादन-मंडल का निर्माण किया गया जिसके मार्ग-दर्शन में हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई हैं। मैं मंडल के सभी सदस्यों के प्रति उनके [illegible]

हिन्दी पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक के निर्माण में संपादन-मंडल के विशेष आमंत्रण पर प्रो० ब्रजभूषण शर्मा तथा प्रो० संकटाप्रसाद उपाध्याय ने इन पुस्तकों के संपादन में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

परिषद् के सहकर्मियों एवं विशेष रूप से हिन्दी पाठ्यपुस्तक योजना से संबद्ध विभागीय सदस्यों विशेषतः श्री अनिल विद्यालंकार, श्री निरंजन कुमार सिंह तथा श्रीमती सुनीता गोयल के प्रति भी आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

हिन्दी संपादन-मंडल के निर्देशानुसार जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र के अध्यक्ष प्रो० नामवरसिंह ने प्रस्तुत पुस्तक का संपादन किया। मैं इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

आशा है बालकों के भाषिक एवं साहित्यिक ज्ञान तथा रुचि के विकास की दृष्टि से यह पुस्तक उपादेय होगी। इसके परिष्कार की दृष्टि से सुविज्ञ जनों द्वारा भेजे गए सुझावों एवं परामर्शों का हम सदा स्वागत करेंगे।

रईस अहमद
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अप्रैल १९७७

संपादकीय

उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण एवं उसके अनुरूप पाठ्यपुस्तकों की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन एवं शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह मूल उपादान है। इस महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य होता रहा है। पर यह कार्य एक सतत विकासशील प्रक्रिया है। बदलती हुई राष्ट्रीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, नूतन जीवन-मूल्यों तथा वांछित विकास की दिशाओं के अनुरूप इनमें संशोधन और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। अतः १०+२ वर्षीय नवीन राष्ट्रीय शैक्षिक योजना को सम्यक रूप से क्रियान्वित करने के लिए परिषद् ने नये सिरे से पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक-प्रणयन का कार्य हाथ में लिया और इसके लिए हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विशिष्ट विद्वानों तथा प्रशिक्षण-विशेषज्ञों का एक उच्चस्तरीय संपादन-मंडल निर्मित किया। इस संपादन-मंडल के निर्देशन में विभिन्न कक्षाओं के लिए हिन्दी पाठ्यपुस्तकों की रचना की जा रही है। फलस्वरूप कक्षा ११-१२ की कविता की पाठ्यपुस्तक आपके सामने है।

इस पुस्तक की कतिपय विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

१. इस पुस्तक में कालक्रमानुसार कवियों की कविताएँ संकलित की गई हैं। इससे विषय-वस्तु, भाषा एवं शैली की दृष्टि से हिन्दी काव्य के क्रमोत्तर विकास का परिचय विद्यार्थियों को हो सकेगा।

२. विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान की क्षमता का ध्यान रखते हुए हिन्दी के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं का समावेश किया गया है। इनके चयन में विविधता का भी विशेष ध्यान रखा गया है जिससे काव्य के विविध रूपों से विद्यार्थी अवगत हो सकेंगे।

३. कविताओं के चयन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा आदर्शों—जनतांत्रिकता, राष्ट्रीय-एकता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक चेतना तथा मानवतावाद के प्रति विद्यार्थियों में आस्था पैदा हो।

४. भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविताओं की अपेक्षा आधुनिक खड़ी बोली की कविताएँ अधिक रखी गई हैं। इससे विद्यार्थियों को आधुनिक हिन्दी काव्य की विविध प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

५. भक्तिकालीन कवियों में तुलसीदास की कविताओं की मात्रा अधिक रखी गई है। विषय-वस्तु, भाषा एवं शैली की दृष्टि से तुलसीदास के काव्य में जो व्यापकता और अनेकरूपता है वह अन्य कवियों में नहीं है। अतः उनके काव्य के विविध रूपों के परिचय के लिए यह आवश्यक था कि उनका पूरा प्रतिनिधित्व इस संकलन में हो जाए।

६. आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम को ध्यान में रखते हुए छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रतिनिधि कवियों की कविताएँ चुनी गई हैं। शैली सादृश्य की दृष्टि से खड़ी बोली के साथ पनपने वाली उर्दू कविता को भी इस संकलन में स्थान दिया गया है। इससे आधुनिक हिन्दी कविता के समग्र रूप की झाँकी उसकी समस्त विशिष्टताओं के साथ विद्यार्थियों को मिल सकेगी।

७. हिन्दी काव्य के विकास को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और उसके सौन्दर्य तत्त्वों के बोध एवं रसास्वादन के लिए पुस्तक की भूमिका—हिन्दी कविता की परंपरा—में हिन्दी कविता के विकास पर प्रकाश डाला गया है। नई कविता के संबंध में प्रायः भाव-बोध की कठिनाई और दुरूहता का प्रश्न उठाया जाता है। अतः भूमिका में नई कविता की विषय-वस्तु, भाषा और शिल्प की विवेचना अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से की गई है।

८. कविताओं के अंत में प्रश्न दिये गए हैं और पुस्तक के अंत में शब्दार्थ एवं टिप्पणियाँ। इनसे बालकों को स्वयं कविता के पठन, अर्थ-ग्रहण, भाव-बोध एवं रसास्वादन में सहायता मिलेगी।

आशा है राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप यह काव्य संकलन ११वीं तथा १२वीं कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और इससे उच्च साहित्यिक अध्ययन के लिए एक सुदृढ़ आधार बनेगा।

पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों और भाषा-शास्त्रियों का सहयोग मिला है। इसके लिए हम उनको हृदय से धन्यवाद देते हैं। जिन कवियों ने अपनी रचना इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति हमें दी है, उनके प्रति हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं विशेषतः श्री अनिल विद्यालंकार, श्री निरंजन कुमार सिंह श्री शशिकुमार शर्मा, डा० हीरालाल बाछोतिया, डा० अनिरुद्ध राय और डा० श्रीमती सविता वर्मा का सहयोग हमें आरंभ से अंत तक मिलता रहा है, उनको धन्यवाद देना हमारा प्रिय कर्त्तव्य है।

विषय-सूची

	पृष्ठ
आमुख	v
सम्पादकीय	vii
हिंदी काव्य की परंपरा	
१. कबीरदास	३
(क) साखी (ख) सबद	२२
२. मलिक मुहम्मद जायसी	
बारहमासा	३०
३. सूरदास	
श्री कृष्ण-जन्म, बाल लीला, राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन, रास लीला, मुरली, नैन, गोपी-विरह, भ्रमर गीत, कुरुक्षेत्र में राधा-कृष्ण का पुनर्मिलन	३७
४. तुलसीदास	
(क) ग्रामवासियों के बीच वनवासी राम (ख) बाल राम, दूलह राम, चित्रकूट, धनुर्धर राम, अयोध्या वापसी (ग) आत्म-परिचय, युग-परिचय (घ) विनय	४६
५. बिहारीलाल	
सौन्दर्य, शृंगार, नीति	५८
६. मतिराम	
सौन्दर्य और शृंगार	६२
७. देव	
रूप और शृंगार	६५
८. घनानंद	
सुजान-प्रेम	६९
९. पद्माकर	
प्रकृति एवं शृंगार	७२
१०. मैथिलीशरण गुप्त	
(क) यशोधरा का विरह गीत (ख) सीता का उटज गीत (ग) नहुष का पतन	७६
११. जयशंकर प्रसाद	
(क) हमारा देश (ख) आँसू (ग) श्रद्धा का सौन्दर्य (घ) श्रद्धा का गीत	८७
१२. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	
(क) वसन्त गीत (ख) बादल राग (ग) ध्वनि (घ) गहन है यह अंध कारा (ङ) फागुन की	९४

१३. सुमित्रानंदन पंत १०१
(क) पर्वत पर पावस (ख) संध्या के बाद
१४. महादेवी वर्मा ११०
(क) मैं नीर भरी दुख की बदली (ख) पंथ होने दो अपरिचित (ग) सब आँखों के आँसू उजले
१५. रामधारी सिंह 'दिनकर' ११६
(क) कस्मैदेवाय (ख) चाँद और कवि
(ग) जनतंत्र का जन्म
१६. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' १२४
(क) नदी के द्वीप (ख) चाँदनी जी लो
(ग) हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान
१७. नागार्जुन १३०
(क) बादल को घिरते देखा है (ख) बहुत दिनों के बाद (ग) अकाल और उसके बाद
१८. गजानन माधव मुक्तिबोध १३६
(क) मुझे क़दम-क़दम पर (ख) एक पागल का गीत
१९. रघुवीर सहाय १४१
(क) धूप (ख) रामदास
२०. धूमिल १४५
मोचीराम
२१. मुहम्मद इक़बाल १५१
(क) परिन्दे की फ़रियाद (ख) नया शिवाला
(ग) ग़ज़ल
२२. अली सरदार जाफ़री १५६
(क) मेरा सफ़र (ख) हाथों का तराना
(ग) मुन्हे-फ़रदा
शब्दार्थ १६३

टिप्पणी पाठ्यक्रमानुसार यह संकलन द्वितीय एवं तृतीय सेमिस्टर में पढ़ाया जाएगा। द्वितीय सेमिस्टर में भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविताएँ और तृतीय सेमिस्टर में आधुनिक काल की कविताएँ पढ़ाई जाएँगी।

कृतज्ञता-ज्ञापन

'चयनिका' में संकलित रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति देने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रति अपना आभार प्रकट करती है :

'यशोधरा का विरह गीत', 'सीता का उदज गीत', 'नहुष का पतन' के लिए प्रबंधक, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, 'हमारा देश', 'आँसू', 'श्रद्धा का सौन्दर्य', 'श्रद्धा का गीत' के लिए श्री रत्नशंकर प्रसाद, 'बादल राग', 'ध्वनि', 'वसंत गीत', 'गहन है यह अंध कार', 'फागुन की आभा,' के लिए श्री राम कृष्ण त्रिपाठी', 'पर्वत पर पावस', 'संध्या के बाद' के लिए श्री सुमित्रानंदन पंत, 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'पंथ होने दो अपरिचित', 'सब आँखों के आँसू उजले' के लिए श्रीमती महादेवी वर्मा, 'कस्मै देवाय', 'चाँद और कवि', 'जनतंत्र का जन्म' के लिए श्री केदारनाथ सिंह, 'नदी के द्वीप', 'चाँदनी जी लो', 'हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान' के लिए श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन, 'बादल को घिरते देखा है', 'बहुत दिनों के बाद', 'अकाल और उसके बाद' के लिए श्री नागार्जुन, 'मुझे कदम-कदम पर', 'एक पागल का गीत' के लिए श्रीमती शांता मुक्तिबोध, 'धूप', 'रामदास' के लिए श्री रघुवीर सहाय, 'मोची राम' के लिए श्रीमती मूरत, और 'मेरा सफ़र', 'हाथों का तराना', 'मुझे-फ़रदा' के लिए श्री अली सरदार जाफ़री।

हिन्दी काव्य की परंपरा

हिन्दी कविता की विकास-यात्रा एक हज़ार वर्ष से कुछ अधिक ही लम्बी है। इस लम्बी अवधि में हिन्दी कविता ने अनेक मंज़िलें तय कीं। आरम्भ में काव्य-भाषा का कोई एक रूप निश्चित न था। अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी, मैथिली, मगही आदि अनेक स्थानीय बोलियों में फुटकर कविताएँ रची जा रही थीं। क्रमशः डिंगल और पिंगल के रूप में दो साहित्यिक शैलियाँ विकसित हुईं। किन्तु काल-क्रम से देश-भाषाएँ साहित्यिक अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हुईं और मध्यदेश की दो बोलियाँ—अवधी और ब्रज—प्रमुख काव्य-भाषा के रूप में उभर कर सामने आईं। फिर इन दोनों में भी ब्रज भाषा कालक्रम से हिन्दी-भाषी प्रदेश की मानक काव्य-भाषा बन गई और अनेक शताब्दियों तक हिन्दी जगत् की सर्वमान्य काव्य-भाषा के सिंहासन पर आरूढ़ रही। आधुनिक युग में गद्य का आरंभ होने पर अंततः खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण किया और अब लगभग सौ वर्षों से वही हिन्दी कविता की भाषा है।

भाषा के अतिरिक्त, छंद-विधान और काव्य-रूप के क्षेत्रों में भी हिन्दी कविता ने परिवर्तन की अनेक दिशाएँ अपनाई हैं। अपभ्रंश काव्य ने पहले ही संस्कृत, पालि-प्राकृत के वर्णवृत्तों से मुक्त होकर दोहा, पद्धड़िया, रोला आदि मात्रिक छंदों की शुरूआत कर दी थी। हिन्दी की आरंभिक कविता ने अपभ्रंश की यह छंद परंपरा सहज ही अपना ली। फलतः दोहा और गेय पद बहुत दिनों तक हिन्दी कविता की अभिव्यक्ति के वाहक रहे। कबीर, सूर, तुलसी आदि सभी समर्थ कवियों ने दोहे और पद लिखे और इनके बाद भी बिहारी, मतिराम प्रभृति शृंगारी कवियों ने दोहों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी ने अपभ्रंश से एक और छंद लिया—चौपाई। और उसे दोहे के साथ मिलाकर कथात्मक काव्य के लिए बहुतायत से इस्तेमाल किया। जायसी कृत 'पद्मावत' और तुलसी कृत 'रामचरितमानस' इस पद्धति के सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। किन्तु कालक्रम से छंद-प्रयोग के क्षेत्र में हिन्दी काव्य ने कुछ अपने नये छंद भी विकसित किए, जिनमें सवैया और घनाक्षरी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः, ये वार्णिक छंद हैं और इन्हें हिन्दी की मात्रिक छंद-बहुल-परंपरा के बीच अपवाद ही समझना चाहिये। किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि सवैया और घनाक्षरी सदियों तक हिन्दी कवियों के बहुत प्रिय छंद रहे हैं और इन छंदों में बहुत ही ललित कविताएँ लिखी गई हैं। किन्तु खड़ी बोली के काव्य-भाषा बनते ही क्रमशः पुराने छंद छूट गए और कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये मात्रिक छंद अपनाए। मैथिलीशरण गुप्त ने कुछ दिनों तक हरिगीतिका को लोकप्रिय बनाया,

फिर वे अन्य छंदों की ओर मुड़े । छायावादी कवियों ने छंद के क्षेत्र में और भी नये प्रयोग किए, यहाँ तक कि निराला ने मुक्त छंद की ही सृष्टि कर डाली और अब तो कुछ अरसे से हिन्दी में मुक्त छंद कविता का पर्याय हो गया है।

काव्य-रूप की दृष्टि से प्राचीन युग में मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार के काव्य लिखे जाते रहे हैं, किन्तु आधुनिक युग में मुक्तक काव्य से भिन्न गीतों और प्रगीतों के विविध रूप प्रचलित हुए हैं । इनके अतिरिक्त 'राम की शक्ति पूजा' और 'अंधेरे में' जैसी लम्बी कविताएँ भी लिखी गई हैं, जो काव्य-रूप की दृष्टि से मुक्तक और प्रगीत से ही नहीं, बल्कि प्रबंध काव्य से भी भिन्न हैं। इस प्रकार हिन्दी कविता ने विगत एक सहस्र वर्ष में काव्य-रूप के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं।

जहाँ तक विषय-वस्तु, विचारधारा और भावबोध का संबंध है, कहने की आवश्यकता नहीं कि गत दस शताब्दियों में हिन्दी कविता के अंदर अनगिनत परिवर्तन हुए। एक जीवंत जाति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति होने के नाते हिन्दी कविता ने प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन को वाणी ही नहीं दी, बल्कि स्वयं उन परिवर्तनों में सक्रिय भूमिका भी अदा करती रही। इस प्रकार हिन्दी कविता में समय-समय पर विविध प्रवृत्तियों, धाराओं और आंदोलनों का उदय हुआ। योगधारा, वीरगाथा, भक्तिभावना, रीतिवाद, राष्ट्रीय चेतना, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता आदि अनेक प्रचलित संज्ञाएँ इसी परिवर्तन की सूचना देती हैं। वस्तुतः ये सुविधा के लिए निर्मित सरल संकल्पनाएँ हैं जिनसे कभी-कभी हिन्दी कविता के विकास की जटिलता ओझल हो जाती है। इसलिए हिन्दी कविता के प्रवृत्तिगत-परिवर्तनों की एक झलक प्राप्त करने के लिए उसके इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा आवश्यक है। अस्तु,

हिन्दी कविता का आदिकाल (१४वीं शताब्दी तक)

आदिकालीन पुरानी हिन्दी कविता की भाषा आज से इतनी भिन्न है कि कभी-कभी उसे हिन्दी कविता के रूप में पहचानना भी कठिन हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में एक तो वह 'प्राकृताभास हिन्दी' है, दूसरे उस हिन्दी का भी कोई एक मानक रूप नहीं है, बल्कि वह अलग-अलग स्थानीय बोलियों के रूप में प्राप्त होती है। वैसे तो कुछ विद्वान अपभ्रंश को भी 'पुरानी हिन्दी' मानकर हिन्दी के अंतर्गत समाविष्ट कर लेने के पक्ष में हैं, पर जैसा कि आचार्य शुक्ल का कहना है, अपभ्रंश उस समय की ठीक बोलचाल की भाषा नहीं है, इसलिए हिन्दी के अंतर्गत अपभ्रंश काव्य का ग्रहण युक्तिसंगत नहीं है। स्वयं विद्यापति के उदाहरण से स्पष्ट है कि एक ओर वे बोलचाल की मैथिली में पदावली लिख रहे थे और दूसरी ओर परंपरागत अपभ्रंश से प्रभावित प्राकृताभास हिन्दी में 'कीर्तिलता'। इस प्रकार 'पदावली' को तो हिन्दी कविता के

आदिकाल में परिगणित किया जा सकता है, किन्तु 'कीर्तिलता' को नहीं। स्वयं विद्यापति का कथन 'देसिल बयना सब जन मिट्ठ' इस बात का प्रमाण है कि १४वीं सदी तक कवि साहित्यिक अपभ्रंश की तुलना में 'देसिल बयना' के माधुर्य से प्रभावित हो चले थे। फलतः आरंभिक हिन्दी कविता में विविध प्रकार की भाषा मिलती है। एक ओर विद्यापति की पुरानी मैथिली है तो दूसरी ओर 'बीसलदेवरासो' में पुरानी राजस्थानी और तीसरी ओर अमीर खुसरो की पहेलियों और मुकरियों में खड़ी बोली। स्पष्ट है कि उस समय भाषा की दृष्टि से हिन्दी प्रदेश स्थानीय बोलियों में बँटा हुआ था और उनके बीच किसी एक साहित्यिक भाषा का समन्वित विकास न हो सका था। स्पष्टतः इसके मूल में हिन्दी जाति का राजनीतिक और सामाजिक बिखराव ही कारण था।

भाषागत विविधता के समान ही आदिकालीन हिन्दी कविता में प्रवृत्तिगत विविधता भी दिखाई पड़ती है। पूर्वी प्रदेश के सरहपा और कण्हपा जैसे सिद्ध यदि योग का उपदेश देते हुए जाति-पाँति का खंडन और धार्मिक बाह्याडंबर का विरोध कर रहे थे तो पश्चिम में राजस्थान के कवि वीरों के शौर्य और प्रेम की गाथाएँ गा रहे थे। एक ओर आध्यात्मिक काव्य-रचना हो रही थी तो दूसरी ओर नितांत लौकिक काव्य-रचना। एक ओर सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों का विरोध था तो दूसरी ओर वीर पूजा। एक ओर मुक्तक लिखे जा रहे थे तो दूसरी ओर प्रबंध काव्य। इसी अवधि के उत्तर काल में विद्यापति जैसे रससिद्ध कवि ने राधाकृष्ण को नायिका और नायक बनाकर सौन्दर्य और प्रेम के मधुर गीत भी लिखे।

समस्त विवादों के बावजूद, सरहपा और कण्हपा के चर्या-पद, विद्यापति की 'पदावली', नरपतिनाल्ह का 'बीसलदेवरासो' तथा चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' आदिकालीन हिन्दी काव्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। सामाजिक रूढ़ियों का विरोध, सौन्दर्य-चित्रण, प्रेम-निरूपण, शौर्यगाथा, प्रकृति-प्रेम आदि विविध प्रवृत्तियाँ इस काल की हिन्दी कविता की सामान्य विशेषताएँ हैं। इस काल की हिन्दी कविता ने अपने छंद भी प्राप्त किए और लोक प्रचलित संगीत भी। भाषा चाहे जितनी अनगढ़ रही हो, किन्तु इस [illegible] हिन्दी कविता में लोकजीवन की जीवंतता असंदिग्ध है। कुल मिलाकर इतना [illegible] ही जा सकता है कि इन्हीं रचनाओं से हिन्दी का आरंभिक रूप विकसित [illegible]

भक्तिकाव्य और मध्ययुगीन हिन्दी नवजागरण (१५वीं [illegible]

धीरे-धीरे १५वीं सदी के आरंभ में हिन्दी का स्वरूप एक [illegible] प्राप्त करने लगा। जैसा कि डा० ग्रियर्सन ने लिखा है, 'कोई भी मनुष्य [illegible] पंद्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का मौका मिला है, उस [illegible]

व्यवधान को लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता, जो पुरानी और नई धार्मिक भावनाओं में विद्यमान है। हम अपने को ऐसे धार्मिक आंदोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आंदोलनों से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी भी देखा है। यहाँ तक कि वह बौद्ध धर्म के आंदोलन से भी अधिक व्यापक और विशाल है, क्योंकि इसका प्रभाव आज भी वर्तमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। यहाँ से हम साधना और प्रेमोल्लास के देश में आते हैं और ऐसी आत्माओं का साक्षात्कार करते हैं, जो काशी के दिग्गज पंडितों की जाति की नहीं है, बल्कि जिनकी समता मध्य युग के यूरोपीय भक्त बर्नर्ड ऑफ केल्यरवक्स, टामस-ए-केम्पिन और सेंट थेरिसा से है।"

इस भक्तिकाल के उद्भव और विकास के कारणों को लेकर विद्वानों में मतभेद है। प्रसंगवश यहाँ इतना ही उल्लेखनीय है कि १४वीं सदी के आसपास भारत की राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस काल तक भारत में मुस्लिम शासकों की सलतनत कायम हो चुकी थी। मुस्लिम शासकों के साथ इस्लाम धर्म भी भारत में आया। वह पहला धर्म था जिसने अपने आपको हिन्दू धर्म में समाहित नहीं किया, उसने अपना अलग अस्तित्व ही कायम नहीं रखा, बल्कि उसे फैलाने का प्रयास भी किया। इससे हिन्दू धर्म के नेताओं को पहली बार संगठित चुनौती का सामना करना पड़ा। यह धर्म अपने साथ एक समतावादी समाज का आदर्श लाया, जिसमें जाति-पाँति और छूआछूत के भाव नहीं थे। यों तो स्वयं हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही जाति-पाँति के भेद-भाव के विरुद्ध पहले से असंतोष चला आ रहा था, किन्तु इस पृष्ठभूमि में वह असंतोष और भी प्रबल हो उठा और नीची समझी जानेवाली जातियाँ इस्लाम की ओर आकर्षित हुईं। उनमें एक ओर तो आत्म-चेतना जाग्रत हुई, दूसरी तरफ जाति-पाँति विरोधी भावनाओं को सामाजिक आधार मिला। हिन्दी में भक्तिकालीन साहित्य की शुरुआत इन्हीं नीची समझी जानेवाली जातियों के सांस्कृतिक उत्थान से हुई। इन पर नवीन इस्लाम धर्म के साथ, पूर्ववर्ती सिद्धों और नाथों का भी प्रभाव पड़ा।

निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय के इन कवियों ने (जो अधिकतर नीची समझी जानेवाली जातियों से आए थे।) प्रत्येक स्तर पर मानवीय सम्बन्धों में बरते जानेवाले भेदभाव को धर्म-विरुद्ध माना। हर वेद-बाह्य चीज गलत है, इस धारणा को चुनौती दी, ब्राह्मण और शूद्र एक ही ईश्वर की सृष्टि हैं, इस विश्वास को स्थापित किया। आचार-विचारों की पवित्रता और आत्म-शुद्धि को परमात्मा का सबसे बड़ा आदेश समझा। इन्होंने ईश्वर की कल्पना भी 'त्राता' के रूप में नहीं, मित्र या प्रियतम के रूप में की। अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए आम जनता के जीवन-व्यवहार से जुड़ी हुई घटनाओं से उदाहरण लिए। उन्होंने अधिकतर

मुक्तकों में अपनी रचनाएँ कीं—कभी दोहा, कभी गेय पद आदि। कबीर, रैदास आदि कवियों की भाषा में पछाँही बोलियों का मिश्रण है। कविता एक तरह से बातचीत और डाँट-फटकार की लय के नजदीक आई। सहजता और सरलता के साथ समाज के प्रति गहरा आक्रोश और व्यंग्य इन कविताओं में मिलता है।

इसके अलावा वैष्णव धर्म का भी इस बीच में पुनरुत्थान हुआ। वल्लभाचार्य और रामानन्द ने क्रमशः कृष्णभक्ति और रामभक्ति के कवियों को सचेत किया।

भक्तिकाल एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसके मूल में यह धारणा निहित थी कि विद्यमान व्यवस्था में कहीं कोई भारी गड़बड़ी हो गई है। सभी भक्त कवियों की रचनाओं में इस प्रकार के भाव मिलते हैं। इस गड़बड़ी के कारणों और इनसे उबरने के उपायों के संबंध में मतभेद है। निर्गुण शाखा के कवि इसमें परिवर्तन चाहते थे और धार्मिक बाह्याचार को इसका कारण समझते थे। सगुण मत वालों के अनुसार इस बुराई की जड़ यह है कि वर्णाश्रम व्यवस्था में शिथिलता आ गई है, सभी वर्णों के लोग अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गए हैं। इसलिए इसको सुधारने का तरीका यह है कि इस व्यवस्था को फिर से पुराने आदर्श के अनुसार ढाला जाए। निर्गुण मतवालों के अनुसार अनुभव ही सत्य है, सगुण मत वालों के अनुसार सत्य शास्त्र में भी है। भक्ति आंदोलन की शुरूआत निर्गुण मत वालों के अभ्युदय के साथ हुई और सगुणमत वालों ने उसे पर्याप्त पूर्णता प्रदान की।

वास्तव में सगुण मतवालों के मूल में अवतारवाद की कल्पना और पुनर्जन्म में विश्वास है। राम और कृष्ण के विविध अवतारों की कल्पना इस दौर में की गई। सामान्यतः राम के प्रति वैधी भक्ति और कृष्ण के प्रति रागानुगा भक्ति से जुड़ी हुई कविताएँ लिखी गईं। निर्गुण मत वालों से ये इस बात में भिन्न हैं कि इन्हें भगवान के साकार रूप में आस्था है, भगवान का रूप मानवीय है और उसके साथ भक्त का व्यक्तिगत संबंध होता है। कृष्ण भक्ति शाखा के सूरदास की भक्ति में 'भावाकुल व्यक्तिवाद' और 'रामभक्ति' शाखा के तुलसीदास में 'मर्यादावाद' मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास को 'लोकमंगल की सिद्धावस्था' और तुलसीदास को 'लोकमंगल की साधनावस्था' का कवि कहा है। सगुण मत में सूरदास और तुलसीदास के अतिरिक्त और भी अनेक महत्त्वपूर्ण कवि हुए हैं।

इसके अलावा सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों का सृजन भी इसी दौर में हुआ। कुतुबन, मंझन, जायसी आदि 'प्रेम की पीर' के कवियों ने भारतीय लोक जीवन में प्रचलित प्रेम कहानियों को आधार बनाकर अपनी रचनाएँ कीं और सूफी धर्म का प्रचार किया। इन्होंने एक व्यापक मानवतावादी आदर्श को सामने रखकर बाह्याचारों और धार्मिक आडंबरों का विरोध किया।

कुल मिलाकर इन ढाई-तीन सौ वर्ष का भक्तिकाल हिन्दी का स्वर्ण-युग माना जाता है। सभी भक्त कवि एक बात पर सहमत हैं—वह यह कि लोक भाषा ही श्रेष्ठ भाषा है। यह सही है कि संस्कृत श्रेष्ठ है फिर भी अपने पाठकों—अपढ़ भारतीय जनता को ध्यान में रखकर सभी भक्त कवियों ने लोक भाषाओं में ही अपनी रचना की। कबीर ने सधुक्कड़ी भाषा में, जायसी और तुलसी ने मुख्यतः अवधी में और सूर आदि ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाएँ कीं। इस काल तक आते-आते एक प्रतिष्ठित काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को मान्यता मिल गई। तुलसी ने यद्यपि 'मानस' की रचना अवधी में की, फिर भी उन्हें ब्रज में भी लिखना पड़ा। इससे प्रकट है कि काव्यभाषा के रूप में ब्रज की स्थापना हो चुकी थी। निर्गुण हो या सगुण या फिर सूफी कवि—सभी कवियों ने लोक जीवन के महत्त्व को स्वीकार किया है। यहाँ तक कि तुलसी ने 'नानापुराणनिगमागम-सम्मत' रचना करते हुए भी जगह-जगह लोक जीवन को ही अपनी बात की सत्यता स्वरूप उदाहरण रूप में रखा था। दूसरी बात यह है कि यह एक ऐसा दौर था, जिसमें पहली बार आम जनता सांस्कृतिक मोर्चे पर सक्रिय हुई। उसने पहली बार अपने संत और कवि पैदा किए। चमार (रैदास), जुलाहे (कबीर), डोम (नाभादास), धुनिया (दादू), छीपी (नामदेव), नाई (सेना), कसाई (सधना) आदि ने अपनी आशाओं और आकांक्षाओं को वाणी दी।

फिर भी तुलसी के बाद हिन्दी में कोई बड़ा भक्त कवि पैदा नहीं हुआ। आरंभिक उल्लास और जीवंतता धीरे-धीरे खत्म होने लगी, भक्ति की लौ मंद पड़ने लगी, और ऐहिकता बढ़ने लगी। राजनीतिक स्तर पर अकबर के बाद भोग-वादी प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं। संघर्ष का काल खत्म हुआ और भोग का दौर शुरू हुआ। साहित्य जहाँ उत्पादक वर्ग से सम्बन्धित था, वहाँ अब उपभोक्ता वर्ग के विलास की वस्तु बनने लगा। कवि झोंपड़ी छोड़कर राजमहलों में पहुँचने लगे। इससे हिन्दी कविता में एक नई प्रवृत्ति शुरू हुई।

रीतिवादी कविता और दरबारी संस्कृति (१७वीं—१८वीं शताब्दी)

भक्तिकाल के दौरान हिन्दी कविता में यद्यपि लौकिक जीवन का गहरा संस्पर्श था, फिर भी उसका मुख्य उद्देश्य ईश्वरोन्मुख था। यह संसार सुंदर होते हुए भी त्याज्य था। जगत् की अवधारणा माया के जाल के रूप में की गई। इस प्रकार की कविताओं से यद्यपि विद्यमान समाज में व्यक्ति की भयावह स्थिति का बोध होता है, तो भी इनमें आगे चलकर जीवन के प्रति एक नकारात्मक भाव विकसित होने लगा। इसकी प्रतिक्रिया में ही आगे चलकर रीतिकालीन कविता का विकास हुआ। इस कविता में परलोक की चिन्ता के बदले 'राधा कन्हाई सुमिरन' के बहाने लौकिक शृंगार के फुटकर छंदों की रचना हुई है।

मुगल साम्राज्य की स्थापना और प्रतिष्ठा के बाद देश में छोटे-छोटे सामंतों में मुगलों के समान ही दरबार सजाने की प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगी थीं। इन सामंतों को किसानों से लगान के रूप में जीविका के साधन उपलब्ध थे, जीवन में कर्मशीलता का नितांत अभाव था। तीतर-बटेरों की लड़ाई, शिकार खेलना या तरह-तरह के विलास में लीन रहना ही उनकी जीवनचर्या थी। काव्य-क्रिया भी इस विलासपूर्ण जीवन-चर्या में शामिल हो गई। कुछ राजा स्वयं भी काव्य रचना का शौक रखते थे। जो स्वयं कविता न लिख पाते थे, उन्होंने कवियों को आश्रय दिया। राजा के आश्रय में आकर कवि उन्हें रिझाने के लिए काव्य रचने लगे। फलतः इस काल में काव्य अपने आप में महान् उद्देश्य हो गया। उद्देश्य के सीमित हो जाने से विषय-वस्तु और काव्य के उपादान भी सीमित हो गए। लोक जीवन से हटकर कविता दरबारों की सजावट का साधन बन गई और किसी भी तरह से आश्रयदाता को प्रसन्न करना महत्त्वपूर्ण हो गया। साथ ही इस दौर में दरबारी कवियों को फारसी की प्रेमपूर्ण कविता का मुकाबला भी करना था। रीतिकाल के कवियों के सामने फारसी के कवि आदर्श और चुनौती थे। इन सब का परिणाम यह निकला कि सीमित उपादानों में कवि-प्रतिभा कुंठित होने लगी। ठाकुर ने इस काल की प्रचलित काव्य परिपाटी का परिचय देते हुए लिखा है कि 'मीन मृग खंजन कमल नैन' तथा 'जस और प्रताप को कहानो' सीखकर 'लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।'

रीतिकाल की कविता की शुरूआत केशवदास की 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' से होती है। बाद में चिंतामणि त्रिपाठी से लक्षण-ग्रन्थों की अखंड परंपरा चली। उसके बाद तो लक्षण-ग्रंथों की भरमार-सी होने लगी। इस बीच कविता लिखने की एक विशिष्ट परिपाटी बन गई। पहले एक छंद में किसी रस छंद या अलंकार के पर्याप्त-अपर्याप्त लक्षण बता दिए जाते और फिर उसी के अनुरूप उदाहरण रूप में मुक्तक कविता लिख दी जाती। संस्कृत साहित्य में कवि और शास्त्रकार दो अलग व्यक्ति होते थे। प्रायः आचार्य अपने सिद्धांत की स्थापना हेतु प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से उदाहरण दिया करते थे। पर हिन्दी में यह भेद लुप्त हो गया। एक ही व्यक्ति साहित्य सिद्धांतकार था और कवि भी। इस अभेद के कारण हिन्दी में संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिंतन की संक्षिप्त 'उद्धरिणी' प्रस्तुत हो गई। उदाहरण स्वरूप कविता रचने की मजबूरी के कारण इस दौर के कवियों में उस स्वच्छंद कल्पना और मौलिक उद्भावना के दर्शन नहीं होते, जो भक्ति काव्य या आगे चलकर छायावादी काव्य में मिलती है। फिर भी, जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'रीति ग्रंथों के कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय विवेचन करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों

(विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरल और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण-ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।"—इन रीतिवादी कवियों में केशवदास, बिहारी, देव, मतिराम, भिखारीदास, पद्माकर आदि महत्त्वपूर्ण हैं। वीर रस के ओजस्वी कवि भूषण भी इसी कोटि में आते हैं।

इस दौर में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने रीतिबद्ध परिपाटी से कुछ अलग टकर अपनी सहज भावानुभूति को वाणी दी। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि इस वृत्ति के मुख्य कवि हैं। इनमें रूढ़ि पालन कम और स्वच्छंदता अधिक है। इसी-ाए इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा जाता है। शृंगारी कवि ये भी हैं, किन्तु नके यहाँ नायिका भेद का रूढ़ विधान नहीं है, प्रेमी और प्रिय के बीच दूती जैसा ई माध्यम नहीं मिलता। प्रेम में अपेक्षाकृत एकनिष्ठता है और चातुरी के स्थान हृदय की सहज सरलता पर बल है। सौन्दर्य के चित्रण में भी स्थूल रूप लिप्सा स्थान पर भाव-संवलित आन्तरिकता की झलक मिलती है। काव्य-कला के क्षेत्र भी नये ढंग की लाक्षणिक वक्रता दिखती है और नये उपमानों के प्रयोग का ूस है। इस प्रकार बहिर्मुखी रीतिबद्ध काव्य की अपेक्षा रीतिमुक्त काव्य कुछ अन्तर्मुखी तथा प्रयोग-धर्मी है।

अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी के रीतिवादी काव्य का दौर लंबा है। नायक-नायिका के प्रेम-प्रसंग जैसे सीमित विषय पर लगभग तीन सौ वर्ष तक धुआँधार कविताएँ लिखी जाती रहीं। इस काल में कवियों ंख्या भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। ऐसा लगता है कि इस दौर में घर-घर थे। कुल मिलाकर हिन्दी का रीतिकाव्य सामंती विलास का सुन्दर दर्पण है। ाल तक आते-आते काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा का एकछत्र शासन त हो गया और यह ब्रजभाषा भी वाक्सिद्ध कवियों के हाथों मंज-सँवर त्यन्त लोचयुक्त, ललित और व्यंजक काव्य-भाषा बन गई। रीतिकाव्य ने में एक बहुत बड़े काव्य-रसिक सहृदय समाज का निर्माण किया, जिसका आधुनिक युग में भी बहुत दिनों तक परिलक्षित होता रहा। अनेक सीमाओं ूजूद रीतिकाव्य ने हिन्दी साहित्य में काव्य-कला और शब्द-साधना की जगाई, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

क पुनर्जागरण, राष्ट्रीय जागरण और आधुनिक काव्यधारा (१९वीं का उत्तरार्ध और २०वीं शताब्दी का आरंभ)

५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से भारत में एक नये युग का आरंभ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता—विशेषतः हिन्दी जाति

का यह पहला लोकव्यापी विद्रोह था। निस्संदेह इस राज्य क्रांति का दमन कर दिया गया, किन्तु दमन के बावजूद जातीय चेतना आगे चलकर अनेक रूपों में व्यक्त होती रही। १९वीं सदी का सांस्कृतिक पुनर्जागरण उसी चेतना का एक रूप है, जो भारतीय मानस में अतीत का गौरव-बोध जाग्रत करने के साथ ही समाज-सुधारों की दिशा में उन्मुख हुआ। पश्चिम के विज्ञान, चिन्तन तथा साहित्य की चुनौतियों ने भारतीय मनीषा को नये ढंग से सोचने के लिए विवश किया। औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई और मध्ययुग के अंधकार से निकलकर भारत ने आधुनिक युग के प्रकाश का अनुभव किया। क्रमशः एक पढ़ा-लिखा नया मध्यवर्ग निर्मित हुआ, जिसने कवि को राज्याश्रय से बाहर निकलकर कविता का जनतंत्रीकरण किया। इस कार्य में प्रेस ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। पत्र-पत्रिकाओं ने नये पाठक समुदाय का निर्माण किया। फलतः नए ढंग के साहित्य की मांग बढ़ी और स्वभावतः साहित्य में नया परिवर्तन आया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि-लेखक हैं, जिन्हें प्रायः आधुनिक हिन्दी का जनक भी कहा जाता है।

भारतेन्दु समर्थ गद्यकार होने के साथ ही संवेदनशील कवि भी थे। उन्होंने युग की नई आवश्यकताओं के अनुसार कविता को नये-नये विषयों की ओर उन्मुख किया। विषय बदला तो भाषा भी बदली। गद्य में खड़ी बोली तो पहले ही से चल पड़ी थी, भारतेन्दु ने काव्य के क्षेत्र में परंपरा प्राप्त ब्रजभाषा को भी बोल-चाल की भाषा के सांचे में ढालकर जीवंत बनाने का प्रयास किया, पर अंततः वे ब्रजमाधुरी के बाहुपाश से पूरी तरह मुक्त न हो सके। यद्यपि उन्होंने खड़ी बोली में भी कुछ पद्य लिखे, पर मन न रमा। वस्तुतः यह कार्य १९वीं सदी के अंतिम दशक में श्रीधर पाठक के हाथों संपन्न हुआ। इसीलिए कुछ लोगों के अनुसार "भारतेन्दु को खड़ी बोली युग का प्रवर्तक मानकर भी कहा जा सकता है कि श्रीधर पाठक ही उसके वास्तविक आदि कवि थे।"

श्रीधर पाठक का 'एकांतवासी योगी' खड़ी बोली का पहला ललित-मधुर काव्य है। 'किसी के प्रेम में योगी होना और प्रकृति के निर्जन क्षेत्र में कुटी छाकर रहना'—यही सार्वभौम विषय इस आख्यान काव्य का आधार है। इस आदर्श प्रेम के अतिरिक्त पाठक जी ने 'काश्मीर सुषमा', 'गुनवंत हेमंत' जैसी प्रकृति-प्रेम की भी कविताएँ लिखी हैं। इसीलिए उन्हें हिन्दी में स्वच्छंदतावादी काव्य-धारा का प्रवर्तक माना जाता है। किन्तु वे अपने युग के अनुरूप देश-प्रेम और समाज सुधार की भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी तत्पर थे। 'और अधिक क्या कहें बापजी, कहते दुखता हिया, जटिल जाति का अटल पाँत का जाल है किसका सिया? भनू जी, तुमने यह क्या किया?' ये पंक्तियाँ भी पाठक जी की ही लिखी हैं। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय

जागरण की भावनाओं से संवलित होकर ही स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ। आगे चलकर २०वीं शताब्दी के आरंभ में इस स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का विकास रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' जैसी काव्य कृतियों में हुआ। त्रिपाठी जी को हिन्दी में लोकगीतों के प्रथम संग्रहकर्त्ता होने का भी गौरव प्राप्त है। उनके काव्य में लोकगीतों की यही मिठास मिलती है। 'पथिक' प्रकृति के मनोरम चित्रों और मार्मिक राष्ट्र-प्रेम के साथ ही खड़ी बोली के लालित्य के प्रति भी आश्वस्त करता है। इस प्रकार श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी ने ब्रजभाषा प्रेमियों के इस आरोप को मिथ्या प्रमाणित कर दिखाया कि खड़ी बोली में तो मधुर काव्य हो ही नहीं सकता।

इस स्वच्छदतावादी काव्यधारा के बीच अथवा समानान्तर सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करने वाली दो काव्यकृतियाँ ऐसी आईं जिन्होंने स्वच्छंद काव्यप्रवाह की सहज गति को कुछ काल के लिए रुद्ध-सा कर दिया। इनमें से एक है अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय-प्रवास' और दूसरी है मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती'। ये दोनों कृतियाँ भी खड़ी बोली में ही हैं, किन्तु यह खड़ी बोली 'एकांतवासी योगी' और 'पथिक' की लोचदार कोमल भाषा से भिन्न हैं। 'प्रिय प्रवास' हिन्दी में संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का पुनर्लेखन है, जिसकी पदावली संस्कृत से होड़ लेती है जैसे 'रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना'। 'भारत भारती' संस्कृत के बोझ से तो मुक्त है, लेकिन इसकी खड़ी बोली सचमुच खड़ी है और कविता सीधे-सीधे वक्तव्य की सीमा तक सपाट है, जैसे 'हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी। आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।' भाषा के अतिरिक्त 'प्रिय प्रवास' मध्ययुग के नायक कृष्ण के चरित्र का गान है, जिसमें पुनर्जागरण युगीन चेतना के अनुरूप ही थोड़ी-सी आधुनिक व्याख्या भी मिलती है। 'भारत भारती' तो अतीत के गौरव की हानि का मर्सिया ही है। आगे चलकर गुप्त जी ने प्राचीन पौराणिक कथाओं के आधार पर अनेक काव्यों की रचना की। उन्होंने 'साकेत' के द्वारा आधुनिक युग में राम-काव्य की धारा बहाने का भी प्रयास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने यदि कृष्ण को पुनर्जीवित किया तो मैथिलीशरण गुप्त ने राम को। इस प्रकार खड़ी बोली के इन दो महाकवियों ने आधुनिक युग में राम और कृष्ण का पुनरुद्धार करके सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना को सार्थक कर दिया। वैसे, युग की माँग के अनुरूप राष्ट्रीयता की भावना भी इन दोनों कवियों में मिलती है, निस्संदेह मैथिलीशरण गुप्त में कहीं अधिक और इसीलिए उन्हें हिन्दी में राष्ट्रकवि के रूप में स्मरण किया जाता है। उल्लेखनीय है कि इन दोनों कवियों के प्रेरणास्रोत इस युग के शलाकापुरुष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व के अनुरूप

ही इस दौर की कविता को 'इतिवृत्तात्मक' विशेषण से विशेषित किया जाता है : इतिवृत्तात्मक अर्थात् तथ्य-कथन-प्रधान और इतिवृत्त-परक।

आगे चलकर २०वीं शताब्दी के परवर्ती दशकों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय भावना के काव्य का और भी विकास हुआ। इस काव्यधारा में 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिणी' के कर्मवीर कवि माखनलाल चतुर्वेदी, 'कुमकुम' के ओजस्वी कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'झाँसी की रानी' की गायिका सुभद्राकुमारी चौहान तथा 'हुंकार' के साथ हिन्दी गगन में उदित होने वाले रामधारी सिंह 'दिनकर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वाधीनता संग्राम में प्रगति के साथ ही हिन्दी की राष्ट्रीय कविता में भी प्रखरता आई। राष्ट्र के उद्‌बोधन का स्तर ऊँचा उठा। साम्राज्यवाद के विरोध में तेजी आई। राष्ट्रीय काव्यधारा स्वाधीनता संग्राम युग के देशव्यापी उत्साह की सबसे ओजस्वी अभिव्यक्ति है।

छायावाद (१९२०-३६)

श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी ने हिन्दी में जिस स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का प्रवर्तन किया उसका चरम विकास बीसवीं सदी के तीसरे दशक के अंतर्गत 'छायावाद' में हुआ। छायावाद का यह विकास राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसार से जुड़ा हुआ है। सन् १९२० में गांधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर संभाली। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम को व्यापक जन-आधार दिया और राजनीतिक लक्ष्य को सत्य और अहिंसा के नैतिक आदर्श से महिमामंडित किया। देश की चेतना उदारपंथी सुधारवाद के दायरे से आगे निकलकर सामंत-विरोध और साम्राज्य-विरोध के क्रांतिकारी पथ पर तेजी से आगे बढ़ी। काव्य-सृजन की दृष्टि से भावना और कल्पना का उन्मोचन इस आन्दोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इस मानसिक मुक्ति में गांधीजी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय कवि मनीषी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है और वे हैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

शुरू-शुरू में छायावाद का काफी विरोध हुआ। साहित्य के क्षेत्र में यह विरोध अभूतपूर्व है। स्वच्छंदवाद और राष्ट्रीय कविता को तो लोगों ने प्रायः स्वीकार कर लिया था, किन्तु छायावाद सहज स्वीकार्य न हुआ। यह विरोध छायावाद के क्रांतिकारी रूप का सूचक है। इन विरोधियों के राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक विचारों पर ध्यान दें तो छायावाद की प्रकृति को समझने में काफी मदद मिल सकती है। विरोधियों में एक थे पंडित पद्मसिंह शर्मा—बिहारी के प्रशंसक, रीतिवादी कविता के गुणग्राहक, साथ ही मैथिलीशरण गुप्त को 'भारत भारती' के लिए प्रेरित करने वाले आर्य समाजी पंडित। निश्चय ही छायावाद रीतिवादी काव्य-रुचि का घोर शत्रु रहा होगा। दूसरे विरोधी थे आचार्य महावीर

प्रसाद द्विवेदी—'सरस्वती' के यशस्वी संपादक, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य गुरु और कविता में उपदेश, शिक्षा और इतिवृत्तात्मकता के कायल। स्पष्ट है कि छायावाद को इस उपयोगितावादी नैतिकता और सरल सुगम पद्यात्मकता से परहेज था। तीसरे समर्थ विरोधी थे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी और जायसी के प्रेमी, काव्य में लोकमंगल के विश्वासी, स्वच्छंदता के प्रशंसक लेकिन रहस्यवाद के घोर विरोधी। निश्चय ही आचार्य शुक्ल जीवन-दृष्टि तथा भावबोध में पद्मसिंह शर्मा और महावीर प्रसाद द्विवेदी से कहीं अधिक प्रगतिशील तथा विकसित थे, किन्तु कहीं न कहीं उसी भाव जगत् के वासी थे, जिससे छायावाद का कल्पनालोक ऊपर पड़ता था। वस्तुतः छायावाद जीवन में मध्ययुगीन सामंती मूल्यों तथा साहित्य में रीतिवादी एवं उपयोगितावादी रुचियों को जड़ से समाप्त करने की दिशा में इस हद तक सक्रिय था कि उसका विरोध स्वाभाविक था।

पूर्ववर्ती काव्य-रुचि से छायावाद का अंतर स्पष्ट करने के लिए एक और उदाहरण लिया जा सकता है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के कारण कालिदास की ओर छायावादियों के समान ही महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल का भी ध्यान गया। द्विवेदी जी ने तो 'कुमार सम्भव' और 'रघुवंश' का अनुवाद भी किया, किन्तु 'द्विवेदी जी की दृष्टि में ये काव्य प्रबंध-काव्य मात्र थे। इसके विपरीत 'छायावादी कवि ने कहानी मानो पढ़ी ही नहीं, कालिदास नामक ऐन्द्र-जालिक द्वारा सशरीर आँखों के सामने ला खड़ी की गई प्रकृति की अनिर्वचनीय मूर्ति को वह अपलक देखता रह गया।" कालिदास के विषय में शुक्ल जी से भी छायावादी कवियों का ऐसा ही अंतर है, क्योंकि शुक्ल जी की दृष्टि में 'मेघदूत न कल्पना की क्रीड़ा है, न कला की विचित्रता। वह है प्राचीन भारत के सबसे भावुक हृदय की अपनी प्यारी भूमि की रूप-माधुरी पर सीधी-सादी प्रेमदृष्टि।' जबकि छायावादी पंत स्पष्ट शब्दों में 'मेघदूत की सजल कल्पना' पर मुग्ध हैं।

इस प्रकार कविता में छायावाद की विशिष्टता उसकी दृष्टि में है। महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि छायावाद ने प्रकृति-चित्रण पर बल दिया, महत्त्वपूर्ण यह है कि छायावाद ने प्रकृति के सौंदर्य को विशेष दृष्टि से देखा। इसे हम विषयनिष्ठ दृष्टि कह सकते हैं। इस विषयनिष्ठ दृष्टि के कारण प्रकृति मन के भावों से रंग उठती है और उस पर कल्पना का रंग चढ़ जाता है। पंत का 'बादल' ऐसी ही कल्पना सृष्टि है। प्रसाद उस प्रकृति पर रहस्यमयता का झीना आवरण डालकर उसे जादुई बना देते हैं। उनके काव्य संसार में प्रकृति और नारी दोनों ही धुंधले-धुंधले रूप में प्रकट होते हैं। प्रसाद की कविता में सौंदर्य 'गोधूलि में मुख पर घूंघट डाले और अंचल में दीप छिपाए' हुए आता है अथवा 'कनक किरण के अन्तराल में लुक छिपकर चलता' है। सम्भवतः ऐसी ही कविताओं के कारण

इस काव्य-प्रवृत्ति को छायावाद की संज्ञा दी गई और कुछ विद्वानों ने उसे 'स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह' कहा।

विषयिनिष्ठ दृष्टि के कारण छायावाद मुख्यतः प्रगीत काव्य है। इसमें वस्तु-वर्णन और वृत्तांत कथन को छोड़कर आंतरिक भाव-व्यंजना पर बल दिया गया है। 'तुम और मैं' एक कविता का शीर्षक मात्र नहीं, बल्कि समूचे छायावाद की स्वर-भंगिमा है। छायावादी गीतों में 'मैं' के रूप में आने वाला यह प्रगीत नायक एक विशेष प्रकार का व्यक्ति है। इसीलिए प्रायः छायावाद को व्यक्तिवाद का काव्य भी कहा जाता है। इस व्यक्तिवाद के चरम विद्रोही रूप की अभिव्यक्ति निराला के काव्य में मिलती है। 'बादल राग' कविता ऐसे ही विप्लव के वीर का आह्वान करती है।

किन्तु 'परिवर्तन', 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'प्रलय की छाया', 'कामायनी' आदि लम्बी काव्य कृतियाँ इस धारणा का खण्डन करती प्रतीत होती हैं कि छायावाद मुख्यतः प्रगीत काव्य है।

छायावादी काव्यधारा ने सोलह-सत्रह वर्षों के अल्पकाल में ही खड़ी बोली में काव्यात्मक अभिव्यंजना की अपार संभावनाएँ उद्घाटित कर दीं। छायावाद के हाथों खुरदरी खड़ी बोली कोमलता और माधुर्य में ब्रजभाषा को भी मात दे गई। भाषा विम्बविधान से समृद्ध हुई और नई-नई लाक्षणिक उक्तियों के द्वारा और अधिक व्यंजक हुई। छायावाद में अनेक प्रकार के नए छंदों और नए शब्दों की सृष्टि हुई।

कुल मिलाकर छायावाद हिन्दी में भक्तिकाव्य के बाद का सबसे उत्कृष्ट काव्ययुग माना जाता है। प्रमुख कवि हैं—प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी तथा मुख्य काव्यकृतियाँ हैं—पल्लव, गुंजन, परिमल, अनामिका, आँसू, कामायनी और यामा।

छायावाद के परवर्ती दिनों में एक अन्य प्रकार की स्वच्छंदतावादी काव्य-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई जिसमें 'जवानी' की मौज-मस्ती तथा लापरवाही को उभारा गया। इसकी शुरूआत हरिवंश राय 'बच्चन' की 'मधुशाला' से हुई, किन्तु आगे चलकर इसमें नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवतीचरण वर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि कवियों ने भी अपने ढंग से साथ दिया। यह काव्य-प्रवृत्ति भी मूलतः रोमांटिक ही थी, किन्तु इसमें हृदय की सहज अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर छायावाद से कहीं अधिक बल दिया गया। भाषा की दृष्टि से यह काव्य-प्रवृत्ति बोलचाल के मुहावरे के अधिक निकट है और इसकी मुद्रा भी अपेक्षाकृत कम दार्शनिक है। इस काव्य में वैयक्तिकता तथा निराशा का स्वर भी अधिक तीखा है। अपने लोकप्रिय गीतों के लिए यह काव्य-प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रगतिवाद (१९३६-१९४७)

छायावाद के गर्भ से सन् १९३० के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य-धारा का जन्म हुआ उसे सन् १९३६ में प्रगतिशील साहित्य का नाम दिया गया। सन् १९३६ के बाद छायावादी कल्पना के विरुद्ध विद्रोह हुआ, जिसमें भावुकता और कल्पनाशीलता की जगह यथार्थवाद और ईमानदारी की माँग की गई। छायावाद के बाद की काव्य-प्रवृत्तियों में मुख्य धारा प्रगतिवादी कविता की रही है, जिसमें छायावाद की स्वस्थ परंपरा का विकास किया गया है।

भारत में १९३६ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई और प्रेमचंद की अध्यक्षता में इसका पहला अधिवेशन लखनऊ में हुआ। तब से साहित्य में प्रगतिशीलता को काव्यमूल्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई।

प्रगतिवाद का आरंभ साहित्य में आर्थिक और राजनीतिक चेतना के रूप में हुआ। हिंदुस्तान की आजादी उस समय लेखकों की प्रमुख समस्या थी, इसके साथ ही वे किसान-मजदूरों के उत्थान के लिए भी चिन्तित थे। छायावादी कविता में प्रेम भावना की ही प्रधानता थी और उसमें जो देश-भक्ति की कविताएँ हुई भी उनसे लोगों की राष्ट्रीय भावनाओं की परितृप्ति नहीं हो सकी। इस प्रगतिवाद के फलस्वरूप कविता में पहली बार किसानों—विशेषतः मजदूरों के गंदे पैरों की पवित्र धूलि दिखाई पड़ी। संध्या के झुटपुटे में पन्त जी को चिड़ियों के "टी वी टी-टुट टुट" के साथ ही "डगमग डग घर का मग" नापते हुए कुछ श्रमजीवी दिखाई पड़ गए और फिर टीले पर उन्हीं के 'नंगे तन गदबदे बदन' वाले लड़के भी आ गए। कविता में पहली बार इतनी व्यापक सहानुभूति का प्रवेश हुआ। परिस्थितिवश यह सहानुभूति 'बौद्धिक' ही थी। फिर भी हृदय की इस विशालता ने साहित्य में नवजीवन का संचार करके साहित्य का क्षेत्र व्यापक बना दिया और उसमें उच्च कोटि के मानववाद को प्रतिष्ठित किया। सुमित्रानंदन पंत की 'युगवाणी' और उससे भी अधिक 'ग्राम्या' में इस भावबोध की पहली सफल अभिव्यक्ति हुई। निराला की प्रसिद्ध व्यंग्य कविता 'कुकुरमुत्ता' (१९४०) भी इसी समय के आसपास आई, जिसने कविता की दुनिया में तहलका मचा दिया। इस कविता में सर्वहारा का प्रतिनिधि कुकुरमुत्ता जिस तरह 'कैपिटलिस्ट' गुलाब को चुनौती देता है, वह तत्कालीन राजनीतिक वातावरण का सच्चा प्रतीक है। इससे तीन-चार साल पहले 'तोड़ती पत्थर' लिखकर निराला हिन्दी कविता में श्रमिक-जन की प्रतिष्ठा कर चुके थे।

प्रगतिशील काव्यधारा के व्यापक प्रभाव का एक कारण यह भी था कि निराला और पंत जैसे छायावाद के प्रवर्तक कवियों ने ही इस नए आंदोलन की भी अगुवाई की। पंत ने प्रगतिशील चेतना के प्रसार के लिए 'रूपाभ' (१९३८) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली।

प्रगतिवाद कविता में यथार्थवाद का पोषक है। यथार्थवाद जयशंकर प्रसाद के शब्दों में "लघुता के प्रति साहित्यिक दृष्टिपात" है। प्रगतिवाद ने समाज के अंदर छोटे समझे जाने वाले लोगों के जीवन पर दृष्टिपात किया और उन्हें कविता का विषय बनाया। शोषित-पीड़ित जनता के प्रतिनिधि किसानों और मजदूरों को कविता में स्थान देने का यही कारण है। इसी प्रकार प्रकृति के क्षेत्र में भी प्रगतिशील कवियों ने छायावादी कवियों के प्रिय कानन-कुसुम को छोड़कर गँवई प्रकृति के चित्रों को उजागर किया और इस तरह हिन्दी कविता में "लहलह पालक, महमह धनिया" की उपेक्षित गंध फैल गई। विषय-वस्तु के साथ ही प्रगतिवाद ने हिन्दी कविता की भाषा का भी जनवादीकरण किया। फलतः लोक जीवन में प्रचलित बोलियों के शब्दों को लेकर कविता फिर जी उठी। प्रगतिशील कवियों ने लोकगीतों के छंद और धुनें भी अपनाईं। इस प्रकार भक्तिकाव्य के बाद पहली बार हिन्दी में बहुत बड़े पैमाने पर जनकाव्य की सृष्टि हुई। निःसन्देह जनता तक पहुँचने के उत्साह में प्रगतिशील कविता कभी-कभी नारेबाजी का भी शिकार हो गई, किन्तु वह कवि सम्मेलनी गीतकारों की तरह सस्ती-सुगम नहीं हुई। भक्तिकाल के समान ही प्रगतिवाद के दौर में भी आम जनता के बीच से अनेक निरक्षर अथवा अल्प साक्षर कवि पैदा हुए जिन्होंने अपनी-अपनी लोकबोली में कविताएँ लिखीं। भक्तिकाव्य के समान ही प्रगतिवाद ने हिन्दी कविता को भारत के अन्य प्रान्तों के साहित्य से जोड़कर उसे व्यापक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य प्रदान किया।

निराला और पंत के अतिरिक्त नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', गजानन माधव मुक्तिबोध और रामविलास शर्मा प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं।

प्रयोगवाद (१९४३-१९४७)

जिस समय साहित्य में प्रगतिवाद प्रभाव की दृष्टि से शिखर पर था, रूप या कला संबंधी नए प्रयोग के नाम पर हिन्दी में एक नया आंदोलन खड़ा करने का प्रयास हुआ, जिसे 'प्रयोगवाद' की संज्ञा दी गई। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' (१९४३) नामक सात कवियों का सहयोगी प्रकाशन इस काव्यांदोलन का गोया घोषणापत्र है।

प्रयोगवाद छायावाद और प्रगतिवाद दोनों के विरोध में खड़ा हुआ। एक ओर उसका विरोध छायावाद की रूमानियत से था तो दूसरी ओर प्रगतिवाद की तथाकथित कला-संबंधी उपेक्षा से। इस प्रकार प्रयोगवाद अपनी घोषणा के अनुसार छायावादी भावुकता का विरोधी एक गैर-रूमानी काव्य-प्रवृत्ति है। भावुकता का विरोध करने के कारण प्रयोगवाद ने कविता में बौद्धिकता पर बल दिया,

किन्तु रूमानियत के विरोध में वह यथार्थवाद की ओर उतना उन्मुख नहीं हुआ। इसी प्रकार प्रयोगवाद ने ज़ाहिरा तौर पर प्रगतिवाद की कलागत उदासीनता का विरोध किया, किन्तु उसका वास्तविक विरोध प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना और जनवाद से था। प्रयोगवाद वस्तुतः चरम व्यक्तिवाद और कलावाद अथवा रूपवाद की कविता है। चरम व्यक्तिवाद प्रयोगवाद को समाज से काटकर व्यक्ति-मन की अंतर्गुहा की ओर ले गया। फलतः प्रयोगवादी कवि अपनी प्रेरणा के लिए फ्रायड की ओर मुड़े, वैसे ही जैसे प्रगतिवाद प्रेरणा के लिए मार्क्स की ओर देखता था। प्रयोगवादी काव्य की मुख्य विषय-वस्तु आधुनिक मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक कुण्ठा थी। इसीलिए आरभ में प्रयोगवादी कविता में यौन प्रतीकों की बहुलता मिलती है। निविड़ अंतर्मुखता के कारण प्रयोगवादी कविता के प्रतीक प्रायः नितांत निजी और दुरूह हो गए हैं। इसीलिए प्रयोगशील कवि की सबसे बड़ी समस्या संप्रेषण है। कविता में भाषा-संबंधी प्रयोग और अन्वेषण का कारण सप्रेषण की यह कठिनाई ही है। जैसाकि अज्ञेय ने कहा है, 'प्रयोग कवि का साधन ही नहीं, बल्कि साध्य भी है क्योंकि वह दुहरा साधन है।' इस साधन की खोज में प्रयोगशील कवियों ने आधुनिक औद्योगिक युग के उपकरणों का भी सहारा लिया। इन यांत्रिक उपकरणों से निर्मित बिंबों और प्रतीकों के कारण निस्सन्देह हिन्दी कविता में पहली बार 'आधुनिकता' के दर्शन हुए। कुछ आलोचकों के अनुसार प्रयोगवाद हिन्दी में 'आधुनिकता' अथवा आधुनिक बोध के उन्मेष का पहला प्रयास है। निस्संदेह यदि 'आधुनिकता' से आशय टी० एस० इलियट और एज़रा पाउंड द्वारा प्रवर्तित आधुनिकतावादी अंग्रेजी काव्य के आधुनिक बोध से है तो एक हद तक यह बात सही है कि प्रयोगवाद हिन्दी में आधुनिकतावादी कविता का आंदोलन है, क्योंकि इलियट और पाउण्ड के समान ही हिन्दी के अज्ञेय आदि कवि भी रोमांटिक काव्य के कट्टर विरोधी हैं, अन्तर है तो सिर्फ इतना कि हिन्दी के ये प्रयोगवादी कवि इलियट आदि की तरह सिद्धान्त में परम्परा के उतने पुजारी नहीं हैं। कुल मिलाकर प्रयोगवाद हिन्दी में व्यक्तिवादी और रूपवादी काव्य-प्रवृत्ति के रूप में स्मरण किया जायगा। निस्संदेह इसके कारण कविता में रूप-सम्बन्धी नए प्रयोग करने की चेतना को बल मिला।

स्वाधीनता की प्राप्ति और आज की कविता (१९४७ से आज तक)

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वाधीन हुआ। स्वाधीनता के साथ देश के दो टुकड़े हुए। भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। हज़ारों मारे गए, लाखों बेघर हो गए। थोड़े ही दिनों बाद राष्ट्रपिता गांधीजी की हत्या कर दी गई। इस तरह आज़ादी की खुशी में ग़म का गहरा रंग था। एक उर्दू शायर के शब्दों में यह "शब-गज़ीदा सहर" थी जिसमें "दाग़ दाग़ उजाला था"। लगभग तीन-चार वर्ष तक यही वातावरण था। इस विषय को लेकर हिन्दी में अनेक सामयिक कविताएँ लिखी

गई । कुछ राष्ट्रीय मुक्ति के उल्लास की, कुछ विभाजन की व्यथा और गांधीजी संबंधी शोक की और कुछ अधूरी आजादी के एहसास की। किन्तु शीघ्र ही देश ने इस परिस्थिति और मनःस्थिति पर विजय प्राप्त कर ली। देशी रजवाड़ों को खत्म करके प्रायः सभी रियासतों को भारतीय गणराज्य में विलीन कर लिया गया। नया संविधान बना। बालिग मताधिकार के आधार पर आम चुनाव हुए। देश में लोकतांत्रिक सरकार कायम हुई । पंचवर्षीय योजना के द्वारा राष्ट्रीय निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ । धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, समाजवाद और गुट-निरपेक्षता की नीतियों को लक्ष्य में रखकर भारत भविष्य की ओर आत्मविश्वास के साथ अग्रसर हुआ। स्वाधीन राष्ट्र में देखते-देखते पुनः एक नवजागरण की लहर छा गई।

इस नए वातावरण में पिछले खेवे के प्रयोगशील कवियों ने 'नई कविता' के सूत्रपात का नारा दिया। अज्ञेय ने अपनी 'तार सप्तक' तक की कविताओं को 'इत्यलम्' नाम से प्रकाशित करके एक दौर के अंत और 'हरी घास पर क्षणभर' (१९४९) के साथ एक नए दौर के आरंभ का संकेत दिया। यही नहीं, बल्कि 'दूसरा सप्तक' (१९५१) प्रकाशित करके उन्होंने अपनी आकांक्षा को सामूहिक रूप भी दे डाला। उल्लेखनीय है कि 'तार सप्तक' के समान ही 'दूसरा सप्तक' में भी कुछ प्रगतिशील कवि भी शामिल हो गए। धीरे-धीरे 'नई कविता' के अंदर पुराने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का संयुक्त मोर्चा बनता प्रतीत हुआ और ऐसा लगा कि विचार-धाराओं का टकराव क्षीण हो रहा है। इस प्रकार लगभग एक दशक तक हिन्दी में 'नई कविता' का बोलबाला रहा। 'तीसरा सप्तक' (१९५९) के प्रकाशन के साथ प्रवृत्ति के रूप में 'नई कविता' का अवसान हो गया। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे आदि तारसप्तकी कवियों के अतिरिक्त शमशेर बहादुर सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, श्रीकान्त वर्मा आदि नई कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इस दौर में केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन जैसे प्रगतिशील कवियों की कविता में भी ऐसी रचनात्मक दृष्टि दिखाई पड़ी जिससे नई कविता का आभास हुआ। 'युग की गंगा' के कवि केदारनाथ अग्रवाल ने 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' नाम से अपनी कविताओं का संकलन प्रकाशित किया और 'युग धारा' के कवि नागार्जुन ने 'सतरंगे पंखों वाली' काव्य कृति प्रस्तुत की।

'नई कविता' प्रयोगवाद से कुछ बातों में भिन्न होते हुए भी वस्तुतः प्रयोग-वाद के विकास का ही दूसरा चरण है। इसके मूल में भी चरम व्यक्तिवाद ही है, बल्कि नई कविता में व्यक्तिवादिता कुछ बढ़ी ही है। 'तार सप्तक' काव्य के समय

ही 'दूसरा सप्तक' में भी 'अन्वेषण' की बात दोहराई गई—किन्तु एक अंतर के साथ। पहले 'राहों के अन्वेषण' की बात की गई थी, अब 'आत्म-अन्वेषण' का प्रश्न उठाया गया। आत्मनिष्ठता का यह स्पष्ट संकेत है। इस दौर में कवियों ने कविता में 'ईमानदारी' का आग्रह किया और 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर विशेष बल दिया। उल्लेखनीय है कि पहले बल बौद्धिकता पर था। यही नहीं बल्कि इस बीच 'तथ्य' को रागात्मक रंग देकर सत्य में ढालने की भी चर्चा की गई। यह परिवर्तन स्वयं नई कविता की कृतियों में भी देखा जा सकता है। नई कविता में प्रेम और प्रकृति के प्रति अनुरागपूर्ण दृष्टि तो है ही, अनुभूति की रागात्मक अभिव्यक्ति भी काफी तीव्र है। विचार प्रधान वक्तव्यों के स्थान पर अनुभूति प्रवण गीतात्मकता की ओर झुकाव दिखता है। बिम्ब-विधान की ओर आकर्षण तथा कोमलकांत पदावली की खोज भी इस दौर की कविता की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। यही सब देखकर कुछ आलोचकों ने कहा है कि नई कविता वस्तुतः नव रोमांटिक उत्थान की कविता है। किन्तु इस नव-रोमांटिक उत्थान को स्वाधीन भारत के नवजागरण का सीधा या सच्चा प्रतिबिंब समझना भूल होगी। यह कविता इतनी आत्मनिष्ठ, वैयक्तिक और कुण्ठाग्रस्त है कि इसमें राष्ट्र की सामाजिक आशाओं—आकांक्षाओं को ढूँढ पाना मुश्किल ही है। किन्तु अपवाद यहाँ भी हैं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (१९६४) के बाद चेतन कवि मुक्तिबोध नई कविता के अंदर रहते हुए भी बराबर उससे संघर्ष करते रहे। उनकी कविता सही अर्थों में स्वाधीन भारत की बेचैनी, आत्म-संघर्ष, आत्म-भर्त्सना, आदि के साथ ही भावी समाज-व्यवस्था की आकांक्षाओं को भी स्पष्टता के साथ चित्रित करती है।

सातवें दशक का मोहभंग और विद्रोही कविता

स्वाधीनता के प्रथम दशक में राष्ट्र के समाजवादी निर्माण के बारे में जो आशाएँ जगी थीं वे क्रमशः टूटने लगीं। आर्थिक दृष्टि से देश की आत्म-निर्भरता का विश्वास डगमगाने लगा। तीसरी पंचवर्षीय योजना के मध्यवर्ती मूल्यांकन से ज्ञात हुआ कि समाजवाद तो दरकिनार, देश में इजारेदार पूँजीवाद का विकास हो रहा है। गहरे आर्थिक संकट के लक्षण प्रकट होने लगे। सातवें दशक में देश के कुछ भागों में भयंकर सूखा और अकाल पड़ा। सांप्रदायिक शक्तियाँ सिर उठाने लगीं और स्वयं लोकतंत्र के लिए खतरा पैदा हो गया। जन-असंतोष जहाँ-तहाँ विद्रोह के रूप में भड़कने लगा। राज-सत्ता के पाँव डगमगाने लगे। असुरक्षा का भाव बढ़ने लगा। १९६२ के चीनी आक्रमण ने राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को गहरी क्षति पहुँचाई। स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु (१९६४) जैसे इस संकट की चरम परिणति थी। कुछ इतिहासकार इस दौर को मोहभंग का युग कहते हैं।

जाहिर है कि ऐसी स्थिति में वैयक्तिक आत्म-निष्ठ 'नई कविता' नहीं चल सकती थी। युग के कटु यथार्थ की आँच सह सकने की क्षमता उसमें थी। देखते-देखते नई कविता अपने आप अप्रासंगिक हो गई। किन्तु इस भाटे की प्रक्रिया में नई कविता अपने पीछे जो छोड़ गई वह 'अकविता' थी, जिसमें एक प्रकार के अस्पष्ट आक्रोश का अकाव्यात्मक आस्फलन भर था। इस समय हिन्दी में अमरीकी बीट कविता की विकृत उद्धरणी हो रही थी। हिन्दी कविता के इस अराजकतापूर्ण वातावरण का अंत राजकमल चौधरी की सशक्त काव्य कृति 'मुक्ति प्रसंग' के प्रकाशन के साथ हुआ। कह सकते हैं कि राजकमल ने अपनी ट्रैजिक मृत्यु के द्वारा इस प्रवृत्ति का शुल्क एक सार्थक कृति के रूप में अदा किया।

किन्तु थोड़े ही समय में 'देह की राजनीति' से खेलने वाली अकविता का स्थान एक विशेष प्रकार की प्रतिबद्ध कविता ने ले लिया, जिसकी सर्वोत्तम उपलब्धि धूमिल हैं। राजकमल चौधरी के समान ही धूमिल भी असमय ही अल्पायु में दिवंगत हो गए, किन्तु अपने एकमात्र कविता-संग्रह 'संसद से सड़क तक' के द्वारा वे आज के वातावरण में सार्थक जीवंत कविता की दिशा का संकेत दे गए। आक्रोश धूमिल की कविता में भी है, लेकिन इस आक्रोश की विडंबना का भी उसमें गहरा एहसास है। साथ ही यह अकवितावादियों का वैयक्तिक आक्रोश नहीं, बल्कि 'जन-आक्रोश' है। यही धूमिल की कविता की शक्ति है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कविता को एक जीवंत भाषा दी जिसका मूल स्रोत आम जनता की बोली में है। इस दौर के अन्य उल्लेखनीय कवि लीलाधर जगूड़ी, ज्ञानेन्द्रपति, चन्द्रकान्त देवताले आदि हैं। इन युवा कवियों के अतिरिक्त पिछले खेवे के रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जसे कवियों ने भी इस दौर में नई सामाजिक चेतना से संपन्न सार्थक कविताएँ लिखीं। इस दौर की समाजचेतन कविताओं को देखकर ऐसा लगता है जैसे एक नए प्रगतिशील काव्य का उत्थान हो रहा है।

कबीर दास

कबीरदास (१३९९-१४९५ ई०) का जन्म काशी में हुआ था और मृत्यु मगहर में। ये पेशे से जुलाहे थे। स्वामी रामानन्द इनके मुख्य गुरु थे। नीची समझी जाने वाली जातियों की सांस्कृतिक चेतना के उत्थान में कबीर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

कबीर युग-संधि पर पैदा हुए थे। उस समय समाज के नीचे तबके पर हठयोगियों, नाथपंथी साधुओं का बड़ा जबर्दस्त प्रभाव था। कबीर ने योगियों द्वारा जाति-पाँति के भेदभाव के खंडन को ठीक समझ कर अपनाया। लेकिन योग के शुष्क क्षेत्र को भक्ति के रस से सिंचित किया। संभवतः प्रेम की पीर उन्होंने सूफियों के संपर्क से प्राप्त की। वे काशी में रहे थे, अतः वहाँ के पंडितों को उन्होंने नजदीक से देखा था। वे मुसलमान परिवार में पले-बढ़े थे, अतः मुसलमान धर्म की कमजोरियों से भी वे परिचित थे। उन्होंने इन धर्मों की संकीर्णता और कट्टरता का खंडन करके मानव-प्रेम की सामान्य भूमि पर दोनों के मेल-मिलाप का पथ प्रशस्त किया। निस्संदेह उनमें 'युग प्रवर्तक का विश्वास' और 'लोकनायक की हमदर्दी' थी।

कबीर क्रांतद्रष्टा कवि थे। उनकी कविता गहरी सामाजिक चेतना से उद्‌भूत हुई है। प्रेम के क्षेत्र में राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद उन्हें बर्दाश्त नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि 'सहज समाधि' सहज प्रेम से ही सिद्ध होती है, टंटे-बखेड़े से नहीं। वह 'कागद की लेखी' की बजाय 'आँखिन देखी' को अधिक प्रामाणिक मानते थे। इसीलिए वह सहज सत्य को इतनी सहज और बेलौस भाषा में अभिव्यक्त कर सके हैं। उनमें बौद्धिक ईमानदारी है, अक्खड़ता नहीं। उनका काव्य अनुभव की ठोस जमीन पर प्रतिष्ठित है।

कबीर की रचनाएँ मुख्यतः 'कबीर ग्रंथावली' में संगृहीत हैं। किन्तु कबीर पंथ में 'बीजक' ही मान्य है। उनकी कुछ रचनाएँ सिक्खों के धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित हैं। कबीर की साखियों की भाषा राजस्थानी-पंजाबी मिली खड़ी बोली है जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'सधुक्कड़ी' कहा है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी का भी व्यवहार है।

कबीर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

ने लिखा है : "ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरही, भेषधारी के सामने प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त; जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधनेवाली और व्यंग्य चोट करने वाली होती थीं। सच पूछा जाए तो हिन्दी में ऐसा जबर्दस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ।"

साखी

एक सबद मैं सब कहा, सब ही अरथ विचार।
भजिए निरगुन ब्रह्म कौं, तजिए बिखै विकार ॥१॥

मैं जानौ पढ़िबौ भलौ, पढ़िबा तैं भल जोग।
भगति न छाँड़ौ राम की, भावै निंदउ लोग ॥२॥

जाकै हिरदै हरि बसै, सो जन कलपै काइ।
एकै लहरि समुंद की, दुख दालिद सब जाइ ॥३॥

खीर रूप हरि नाउँ है, नीर आन ब्यौहार।
हंस रूप कोउ साधु है, तत का छाननहार ॥४॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जानि।
दसवाँ द्वार देहुरा, तामें जोति पिछानि ॥५॥

कबीर दुनिया देहुरै, सीस नवावन जाइ।
हिरदै भीतरि हरि बसै, तू ताही सौंल्यौ लाइ ॥६॥

हिंदू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, जो दुहुँ कै निकटि न जाइ ॥७॥

काबा फिरि कासी भया, रामहिं भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥८॥

सेख सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जाकौ दिल साबित नहीं, ताकौ कहाँ खुदाइ ॥९॥

तीरथ करि-करि जग मुआ, जूड़ै पानी न्हाइ।
राम नाम जाने बिना, काल गरासा जाइ ॥१०॥

इही उदर कै कारनै, जग जाँच्या निसि जाम।
स्वामीपना जु सिर चढ़ा, सरा न एकौ काम ॥११॥

कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरी खटाइ।
राजदुवारै यौं फिरै, ज्यौं हरहाई गाइ ॥१२॥

कबीर कोठी काठ की, दह दिसि लागी आगि।
पंडित पंडित जरि मुए, मूरख उबरे भागि ॥१३॥

कबीर तासौं प्रीति करि, जाकौ ठाकुर राम।
राजा राना छत्रपति, आवहिं कौने काम ॥१४॥

है, गै, बाहन सघन धन, छत्र धुजा फहराइ।
ता सुख तै भिख्या भली, जो हरि सुमिरत दिन जाइ ॥१५॥

है, गै, बाहन सघन धन, छत्रपति की नारि।
तासु पटतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥१६॥

ऊँचे कुल का जनमिया, जे करनी ऊँच न होइ।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निंदा सोइ ॥१७॥

सपनै हू बरराइ कै, जिहिं मुख निकसै राम।
ताके पग की पनही, मेरे तन को चाम ॥१८॥

पखा पखी के कारनै, सब जग रहा भुलान।
निरपख होइ कै हरि भजै, सोई संत सुजान ॥१९॥

जानि बूझि साँची तजै, करै झूठि सौं नेहु।
ताकी संगति रामजी, सपनै हू जनि देहु ॥२०॥

मैं रोऊँ संसार कौं, मोको रोवै न कोइ।
मोको रोवै सो जना, जो सबद बिबेकी होइ ॥२१॥

ज्यौं नैननि मैं पूतरी, त्यौं खालिक घट माँहि।
मूरख लोग न जानहीं, बाहरि ढूँढन जाँहि ॥२२॥

हस्ती चढ़िए ज्ञान कौ, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँकन दे झख मारि ॥२३॥

देह धरे का दंड है, सब काहू कौं होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, मूरख भुगतै रोय ॥२४॥

सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै ॥२५॥

कबीर-ग्रंथावली

सबद

मेरा-तेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागदकी लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।
जुगन-जुगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
सतगुरु धारा निर्मल बाहै, वामें काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, तब ही वैसा होई रे ॥१॥

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।
हिन्दू कहत, राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दौऊ लड़े मरतु हैं, मरम कोइ नहिं जाना।
बहुत मिले मोहि नेमी, धर्मी, प्रात करै असनाना।
आतम-छाँड़ि पषानैं पूजै, तिनका थोथा ज्ञाना।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन मैं बहुत गुमाना।
पीपर-पाथर पूजन लागे, तीरथ-बरत भुलाना।
माला पहिरे, टोपी पहिरे छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना।
घर-घर मंत्र जो देन फिरत हैं, माया के अभिमाना।

गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना।
बहुतक देखे पीर-औलिया, पढ़े किताब-कुराना।
करै मुरीद, कबर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना।
हिन्दु की दया, मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह, वां झटका मारे, आग दोऊ घर लागी।
या विधि हँसत चलत हैं, हमको आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, इनमें कौन दिवाना ॥२॥

यह जग अंधा, मैं केहि समुझावों।
इक-दुइ हौं, उन्हें समुझावों, सबहि भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा, पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुंदा।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घरको वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूंढ़त अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, इक दिन जाय लंगोटी झार बंदा ॥३॥

साधो सहज समाधि भली।
गुरुप्रताप जा दिनतै उपजी, दिन-दिन अधिक चली।
जहँ-जहँ डोलौं सोइ परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं, तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खाँव-पिवौं सो पूजा।
गिरह-उजाड़ एकसम लेखो भाव न राखो दूजा।
आँख न मूँदो, कान न रूँधो, तनिक कष्ट नहिं धारो।
खुलें नैन पहिचानो हँसि-हँसि सुन्दर रूप निहारो।
सबद निरंतर से मन लागो, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी।
कहु कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट करि भाई।
दुख सुखसे कोई परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥४॥

प्रश्न और अभ्यास

१. कबीर की साखियों के आधार पर निम्नलिखित वाक्य पूरे कीजिए :

(क) मेरा एक ही उपदेश है कि सब विषय-विकार छोड़कर.....।

(ख) तीर्थों के पवित्र जल में स्नान करने से कोई लाभ नहीं। मुक्ति तभी होगी जब.....।

(ग) यदि मनुष्य अच्छे कर्म नहीं करता तो उत्तम कुल में जन्म लेने से कोई लाभ नहीं, जैसे.....।

२. नीचे कुछ दोहों का सार दिया गया है। संबद्ध दोहे का पहला चरण बताइए :

(क) साधु हंस के समान गुणग्राही होता है।

(ख) जिसको सन्तोष नहीं होता, उसको ईश्वर नहीं मिल सकता।

(ग) उसी मनुष्य को जीवित या प्राणवान् मानना चाहिए, जो भेद-भाव से परे है।

(घ) ईश्वर सर्वव्यापक है।

३ निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हुए कबीर दास के भक्ति संबंधी विचार संक्षेप में लिखिए :

निर्गुण ब्रह्म, भेद-भाव, संतोष, मुक्ति, तीर्थ, निष्पक्ष, सत्यनिष्ठा, घटघटवासी।

४. 'साधो देखो जग बौराना' पद में कबीर क्या कहना चाहते हैं ?

५. 'पानी के घोड़ा, पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस के बुंदा'—का रूपक स्पष्ट कीजिए।

६. निम्नलिखित शब्दों के तत्सम रूप लिखिए :

हिरदै, समुन्द, दालिद, तत, सुमिरन, मनुआ, दियना।

७. साखी का क्या अर्थ है ? कबीर के दोहे साखी क्यों कहलाते हैं ?

८. कबीर की भाषा-शैली पर सोदाहरण टिप्पणी लिखिए।

९. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए :

(क) कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि।
पंडित-पंडित जरि मुए, मूरख उबरे भागि॥

(ख) काबा फिरि कासी भया, रामहि भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥

(ग) मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो उरझाई रे।

(घ) करै मुरीद कबर बतलावे, उनहूँ खुदा न जाना।

(ङ) साधो सहज समाधि भली।

T-D-C

॥ २ ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी (१४९२-१५४२ ई०) का जन्म जायस (अमेठी) नामक ग्राम में हुआ था, इसी से ये जायसी कहलाए। वे सूफी कवि थे। वे आरम्भ से ही ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। जायसी ने अपने दो गुरुओं का उल्लेख किया है, एक सैयद अशरफ और दूसरे शेख मुहीउद्दीन। सूफी फकीरों के अलावा जायसी ने कई हिन्दू साधुओं के सत्संग का भी लाभ उठाया। जायसी के तीन ग्रंथ मिलते हैं—'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम'। इनमें 'पद्मावत' ही अधिक प्रसिद्ध है और यही जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है।

'पद्मावत' में प्रेमगाथा परम्परा अपनी प्रौढ़ता के शिखर पर पहुँची। 'पद्मावत' प्रबन्ध काव्य है। इसमें कवि ने रानी पद्मिनी या पद्मावती और राजा रत्नसेन की प्रेम-कथा को आधार बनाकर प्रेम की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। इसकी भाषा ठेठ अवधी है और इसकी रचना दोहा-चौपाइयों की छंद पद्धति पर हुई है। इसमें जायसी ने फारसी की मसनवी शैली को अपनाया है, जिसमें कथा सर्गों में बँटी नहीं होती, बराबर चलती रहती है। केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में होता है। लेकिन काव्य का रूप विदेशी होते हुए भी उसकी आत्मा विशुद्ध भारतीय है और भारतीय पृष्ठभूमि में प्रेम का यह चित्रण और भी मार्मिक हो उठा है।

सूफी प्रेम-पद्धति के निर्वाह के लिए जायसी ने अपने काव्य में परोक्ष सत्ता के संकेत भी दिए हैं। सूफी कवियों ने अपने कथानकों की प्रेमिका को भगवान् का प्रतीक माना है। जायसी भी पद्मावती के माध्यम से जगह-जगह परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करते हैं. लेकिन यह सब है परम्परा का निर्वाह ही। ऐसे स्थल काव्य-गुण की दृष्टि से कमजोर हैं। वस्तुतः कवि की वृत्ति ऐसे स्थलों पर रमी है जहाँ मानवीय प्रेम के सहज रूप का चित्रण हुआ है। 'नागमती का विरह-वर्णन' ऐसा ही एक प्रसंग है।

जायसी मूलतः संवेदनशील कवि हैं। वे ऐसे कवि थे जो स्वयं हल चलाते थे और जायस में एक साधारण किसान की हैसियत से रहते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त उपमा, रूपक, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, यहाँ तक कि काव्य-भाषा की भंगिमा पर भी किसान जीवन की छाप है। कवि 'पद्मावत' की कथा के लिए ही नहीं, 'बारहमासा' जैसे मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना के लिए भी लोक-

संस्कृति का आश्रय लेता है। कदाचित् इसीलिए नागमती हमारे सामने एक सामान्य नारी के रूप में आती है, रानी के रूप में नहीं। उसे विविध नक्षत्रों और उनके लोक-विश्रुत प्रभाव का ज्ञान है, प्रिय के अभाव में मंदिर न जा पाने का दुख है, बरसात की झड़ी और जेठ की लू का अहसास है। प्रेम के इस लोकधर्मी स्वरूप के कारण ही कवि प्रेम के ऐसे रूप को व्यक्त कर सका, जो मानव मात्र के लिए सुलभ है।

बारहमासा

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए॥
खरग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घनघोरा॥
अद्रा लाग बीज भुइँ लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई॥
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारू मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ॥
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मंदिर को छावा॥

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें, हम सुख भूला सर्ब॥१॥

सावन बरिस मेह अतिवानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरानी॥
लागु पुनर्बसु पीऊ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा॥
रकतक आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइँ कुसुंभि तन चोला॥
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झँकोरा॥
बाट असूझ अथाह गंभीरा। जिउ बाउर भा भवँ भंभीरा॥
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी॥

परवत समुंद अगम बिच, बन बेहड़ घन ठंख।
किमि करि भेटौं कंत तोहि, ना मोहि पाँव, न पंख॥२॥

भर भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी॥
मंदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा॥
रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरिसै मघा झँकोरि-झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी॥
पुरवा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झरी॥
धनि सूखी भर भादौ माहाँ। अबहूँ आइ न सींचसि नाहाँ॥

जल-थल भरे अपूरि सब, गगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन अोगाह महँ, दे बूड़त पिय टेक ॥३॥

लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुँ आउ पिउ परभूमि लटा॥
तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया॥
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा॥
चित्रा मित मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा॥
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुद्र मोति लै भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुररहिं खंजन देखाए॥
भए अवगास कास बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले॥

बिरह हस्ति तन सालै, खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु, गाजहु होइ सदूर॥४॥

कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल हौं बिरहैं जारी॥
चौदह करा कीन्ह परगासू। जनहुँ जरें सब धरति अकासू॥
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौ घर नाहिंन कंत पियारा॥
अबहूँ निठुर आव एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमर गावहि अँग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा॥

सीखि मानहिं तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु, तेहि रही छार सिर मेलि॥५॥

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी॥
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती॥
काँपा हिया जनावा सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लै गा नाहूँ॥
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रंग सोई॥
सियरि अगिनि बिरिहिनि हिय जारा। सुलगि-सुलगि दगधै भै छारा॥
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू॥

पिय सौं कहेहु संदेसड़ा, ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहैं जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग ॥६॥

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा॥
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कँपि कँपि मरौं लेहि हरि जीऊ॥
कंत कहाँ हौं लागौ हियरैं। पंथ अपार सूझ नहिं नियरैं॥
सौर-सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला॥
रैन अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जिऔं बिछोही पंखी॥
बिरह सचान भँवे तन चाँड़ा। जीयत खाइ, मुएँ नहिं छाँड़ा॥

रकत ढरा माँसू गरा, हाड़ भए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, आइ समेटहु पंख ॥७॥

लोमेउ माह परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला॥
पहल पहल तन रुई जो झाँपै। हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ॥
एहि मास उपजै रस मूलू। तूँ सो भँवर मोर जोबन फूलू॥
नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू। तेहि जल अंग लाग सर चीरू॥
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गियँ नहिं हार रही होइ डोरा॥

तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई, तन तिनुवर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उड़ावा झोल ॥८॥

फागुन पवन झँकोरै बहा। चौगुन सीउ जाइ किमि सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा॥
तरिवर झरैं झरैं बन ढाँखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा॥
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फाग करहि सब चाँचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी॥
जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा॥
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंस छार जेऊँ तोरें॥

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं, कंत धरै जहँ पाउ ॥९॥

चैत बसंता होइ धमारी। मोहि लेखें संसार उजारी॥
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरी बन ढारै॥
बूड़ि उठै सब तरिवर पाता। भीज मँजीठ टेसू बन राता॥
मोरें आँब फरें अब लागे। अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे॥
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरे सँवरि मालती॥
सो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे॥
भर जोबन एहु नारंग साखा। सोवा बिरह अबं जाइ न राखा॥

घिरिनि परेवा आव, जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराए हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि॥१०॥

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चंदन भो आगी॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहँ रथ हाँका॥
जरत बजागिनि होउ पिय छाँहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। बहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू॥
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक-टूक होइ होइ बिहराई॥
बिरहत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवँगरा मेरवहु एका॥

कँवल जो बिगसा मानसर, छारहिं मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिय सींचहु आइ॥११॥

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा॥
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा॥
चारिहुँ पवन झँकोरै आगी। लंका डाह पलंका लागी॥
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी॥
उठे आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुख बाँधी॥
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा॥
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागा। अबहुँ आउ आवत सुनि भागा॥

परबत समुँद मेघ ससि दिनअर, संहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिए, जरै जो अस पिय लागि ॥१२॥

— पद्मावत

प्रश्न और अभ्यास

१. नागमती कौन थी ? जायसी ने उसकी विरह-दशा के वर्णन में सामान्य नारी की अनुभूतियों का चित्रण किया है, इस मान्यता से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

२. वर्षा ऋतु में नागमती की विरहावस्था का वर्णन कीजिए।

३. रूपक स्पष्ट कीजिए :
(क) खरग बीज चमकै चहुँ ओरा।
बुँद बान बरिसै घनघोरा ॥
(ख) विरह हस्ति तन सालै, खाय करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु, गाजहु होइ सदूर ॥

४. व्याख्या कीजिए :
(क) पिय सौं कहेहु संदेसड़ा, ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग ॥
(ख) यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं, कंत धरै जहँ पाउ ॥

५. निम्नलिखित शब्दों के तत्सम रूप लिखिए :
पाँति, पुख, अनतै, औगाह, निठुर, दिनअर, नाहूँ, बजागिनि, दिस्टि, हनिवंत।

६. 'दहि भइ स्याम नदी कालिन्दी' पंक्ति में विरह की व्यापकता दिखाकर कवि क्या संकेत करना चाहता है ?

———

: ३ :

सूरदास

महाकवि सूरदास (१४७८-१५८३ ई०) का जन्म स्थान रुनकता या रेणुकाक्षेत्र माना जाता है। किशोरावस्था में ही विरक्त होकर वे मथुरा चले गए और बाद में मथुरा और वृन्दावन के बीच गऊघाट पर रहने लगे। यहीं महाप्रभु वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई। उन्होंने अपना एक भजन गाकर महाप्रभु को सुनाया जिससे वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। उन्हीं के आदेश से सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर कृष्णलीला का गान किया।

कहा जाता है कि सूर जन्मान्ध थे। किन्तु उनके काव्य में रंगोज्ज्वल वर्णनों को देखकर इस बात पर विश्वास नहीं होता। इनके रचे तीन ग्रंथ मिलते हैं— 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी'। इनमें से 'सूरसागर' ही उनकी अमर कीर्ति का आधार है। प्रसिद्ध है कि 'सूरसागर' में सवा लाख पद हैं, लेकिन अभी तक इसके लगभग पाँच हजार पद ही उपलब्ध हो सके हैं।

सूरदास सौन्दर्य और प्रेम के अमर गायक हैं। उन्होंने मुख्यतः वात्सल्य और शृंगार का ही चित्रण किया लेकिन वे इस क्षेत्र का कोना-कोना झाँक आए। उन्होंने एक ही रस के अंतर्गत नए-नए प्रसंगों की उद्भावना की है। प्रसंगोद्भावना की ऐसी प्रतिभा हमें तुलसी में भी नहीं दिखाई देती। 'जीवन के एक ही क्षेत्र के भीतर कथावस्तु की यह रमणीय कल्पना' देखते ही बनती है। उनके सूरसागर में गीतिकाव्य के भीतर से महाकाव्य का स्वरूप झाँकता हुआ प्रतीत होता है।

सूरदास के पदों में ब्रजभाषा का बहुत ही परिष्कृत और निखरा हुआ रूप देखने को मिलता है। भाषा और भाव की इस अभूतपूर्व पूर्णता के कारण 'सूरसागर' पहले से चली आती हुई गीतिकाव्य परम्परा का विकास जान पड़ता है। यह परम्परा वस्तुतः लोकगीतों की परंपरा थी। सूरदास ने अपनी प्रतिभा के संश्लेष से इसमें 'नया उत्कर्ष' पैदा किया। सूर के पदों में लोकगीतों की भाँति ही उच्च कोटि की तन्मयता है। उनके काव्य को विशुद्ध काव्य कहने की ललक में उनका लोकसंग्रहवादी रूप दब नहीं जाना चाहिए। उनका काव्य वस्तुतः 'मानव-प्रेम का जयगान' है।

श्रीकृष्ण जन्म

ब्रज भयौ महर के पूत जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल गनक-गुनी।
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी।
ग्रह-लगन-नखत-पल सोधि, कीन्ही बेद धुनी।
सुनि धाई सब ब्रजनारि, सहज सिंगार किए।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिए।
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिए।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिए।
पिय-पहिले पहुँची जाइ अति आनंद भरी।
लई भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु-पाइँ परी।
इक बदन उघारि निहारि, देहिं असीस खरी।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी ॥१॥

सोभा सिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री॥
देखी जाइ आजु गोकुल में, घर-घर बेचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री॥
जसुमति-उदर-अगाध, उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री।
सूरस्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री॥२॥

बाललीला

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै॥

तू काहे नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै॥
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावै॥३॥

हरि अपने आंगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत॥
बांह उठाइ काजरी-धौरी, गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुंक बाबा नंद पुकारत, कबहुंक घर में आवत॥
माखन तनक आपने कर लै, तनक बदन में नावत।
कबहुंक चितै प्रतिबिंब खंभ में, लोनी लिए खवावत॥
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नित ही देखत भावत॥४॥

खेलन में को काको गुसैयां।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां॥
जाति-पांति हम तें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनावत यातें, जातें अधिक तुम्हारें गैयां॥
रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहं-तहं सब ग्वैयां।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाँउ दियो करि नंद-दुहैयां॥५॥

राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन

खेलन हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिये भौंरा, चक, डोरी॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि वर, दसन-दमक दामिनि-छवि छोरी।
गए स्याम रवि-तनया कै तट, अंग लसति चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहं राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥

संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन थोरी, अति छवि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी ॥६॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखीं नाहिं कबहुँ ब्रज-खोरी॥
काहे कौ हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥७॥

प्रथम सनेह दुहूँनि मन जान्यौ।
नैन-नैन कीन्हीं सब बातैं, गुप्त प्रीति प्रकटान्यौ॥
खेलन कबहुँ हमारे आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारे आइ टेरि मोहि लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ॥
जौ कहिये घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि।
तुमहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि॥
सूधी निपट देखियत तुमको, तातैं करियत साथ।
सूर स्याम नागर, उत नागरि राधा, दोउ मिलि गाथ॥८॥

गोचारण

मैं अपनी सब गाय चरैहौं।
प्रात होत बल के संग जैहौं, तेरे कहैं न रैहौं।
ग्वाल बाल गाइनि के भीतर, नैकहु डर नहिं लागत।
आजु न सोवौं नंद दुहाई, रैनि रहोंगौ जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं, मैं घर बैठो रैहौं।
सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब, प्रात जान मैं दैहौं॥९॥

रासलीला

मानौ माई घन-घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अन्तर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।

सुन्दर ससि गुन रूप-राग निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भई गुन ग्रामिनि ।
रूप-निधान स्याम सुन्दर घन, आनंद मन बिस्रामिनि ॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि ।
को गति गने सूर मोहन सँग, काम बिमोहू यौ कामिनि ॥१०॥

मुरली

मुरली तऊ गुपालहिं भावति ।
सुनि री सखी जदपि, नंदलालहिं नाना भाँति नचावति ॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति ।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति ॥
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति ।
आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर-पल्लव पलुटावति ॥
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति ॥११॥

नैन

उपमा नैन न एक रही । सौन्दर्य
कवि जन कहत-कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही ॥
कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात ।
हरि मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ॥
ऊधौ बधिक व्याध ह्वै आए, मृग सम क्यों न पलात ।
भागि जाहिं बन सघन स्याम में, जहाँ न कोऊ घात ॥
खंजन मनरंजन न होहिं ये, कबहुँ नहीं अकुलात
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ॥
प्रेम न होइ कौन विधि कहिए, झूठै ही तन आड़त ।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥१२॥

गोपी विरह

निसि दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहत बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे॥
आँसू सलिल सबै भई काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे॥१३॥

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जो कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात॥
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, घुरि-घुरि लहरै खात॥१४॥

स्याम बिना उनए ये बदरा।
आजु स्याम सपने में देखे, भरि आए नैन ढरकि गयौ कजरा॥
चंचल चपल अतिहिं चित चोरे, निसि जागत मोको भयौ पगरा।
सूरदास प्रभु कबहिं मिलौगे, तजि गए गोकुल मिटि गयौ झगरा॥१५॥

भ्रमर गीत

निरगुन कौन देस को बासी?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साच न हाँसी॥
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी।
कैसे बरन, भेष है कैसौ, किहि रस के अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियौ आपनो, जो रे करेगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो बावरो, सूर सबै मति नासी॥१६॥

ऊधौ तुम हौ अति बड़ भागी।
अपरस रहत सनेह तगादें, नाहिन मन अनुरागी॥
पुरइन पात रहत जल भीतर, ता रस देह न दागी।

ज्यौं जल माहें तेल की गागरि, बूंद न ताको लागी ॥
प्रीति नदी में पाउँ न बोर्‌यौ, दृष्टि न रूप परागी ।
सूरदास अबला हम भोरी, गुर चींटी ज्यौं पागी ॥१७॥

मधुकर प्रीति किये पछितानी ।
हम जानी ऐसेहि निबहैगी, उन कछु औरै ठानी ॥
वा मोहन कौ कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी ।
हमकौ लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी ॥
सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागत रैनि बिहानी ।
जब तैं गवन कियौ मधुबन को, नैननि बरषत पानी ॥१८॥

हमारैं हरि हारिल की लकरी ।
मनक्रम बचन नंद नंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी ॥
जागत सोवत स्वप्न दिवस निसि, कान्ह कान्ह जकरी ।
सनत जोग लागत है ऐसो, ज्यौं करुई ककरी ॥
सु तौं व्याधि हमकौ लै आए, देखी सुनि न करी ।
यह तौ सूर तिनहिं लै सौंपौ, जिनके मन चकरी ॥१९॥

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंस सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छाँहीं ॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वाल बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ॥२०॥

कुरुक्षेत्र में राधा-कृष्ण का पुनर्मिलन

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई॥
बिहंसि कह्यौ हम तुम नहिं अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज बिहार नित नई नई॥२१॥

—सूरसागर

प्रश्न और अभ्यास

१. श्रीकृष्ण के जन्म पर गोकुल के आनन्दोत्सव का वर्णन पहले पद के आधार पर कीजिए।

२. 'सोभासिन्धु न अन्त रही री'—पद में शोभा रूपी नदी की क्या विशेषता कवि ने बताई है?

३. यशोदा श्रीकृष्ण का नाचना-गाना छिप कर क्यों देखती हैं? बाल-कृष्ण की इस क्रीड़ा का वर्णन कीजिए।

४. खेल में श्रीकृष्ण के रूठने पर श्रीदामा ने उन्हें किस प्रकार डाट बताई?

५. राधा और श्रीकृष्ण के प्रथम मिलन का वर्णन कीजिए।

६. 'मानो माई घन घन अन्तर दामिनि'—पद का चित्रात्मक सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए। इस पद के अनुसार रासलीला का वर्णन कीजिए।

७. गोपियों को मुरली से क्या शिकायत है?

८. नेत्रों के सब उपमान वियोगिनी राधा के नेत्रों पर चरितार्थ क्यों नहीं होते? कौन सा उपमान सार्थक है?

९. सूरदास के वियोग-वर्णन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

१०. भ्रमर गीत की क्या कथा है? गोपियों के सामने उद्धव क्यों निरुत्तर हो गए?

११. निम्नांकित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए :

(क) जसुमति उदर अगाध उदधि तें उपजी ऐसी सबनि कही री।

(ख) खेलन में को काको गुसैयां।

(ग) खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक भाइ-भेद गज गामिनि।

(घ) पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात।

(ङ) हमारे हरि हारिल की लकरी।

(च) तदपि सूर मेरी यह जड़ता मंगल-माँहि गनी।

१२. सूरदास के भाव-सौन्दर्य पर एक लेख लिखिए।

: ४ :

तुलसीदास

लोकनायक तुलसीदास (१५४०-१६२३ ई०) का जन्म बाँदा जिला (उत्तर-प्रदेश) के राजापुर ग्राम में हुआ था। कुछ विद्वान उनका जन्म-स्थान सोरों भी मानते हैं। उनका बचपन बड़े कष्ट में बीता। जन्म होते ही माता-पिता चल बसे, जैसे-तैसे भीख माँग-माँग कर अपना पेट पाला। सौभाग्यवश उन्हें गुरु अच्छे मिल गए थे। उनके गुरु का नाम नरहरिदास बताया जाता है। गुरु से तुलसीदास ने अनेक बार रामकथा सुनी। लेकिन उस समय वह निरे बालक थे, अतः समझ न सके। पंद्रह वर्ष की अवस्था में रत्नावली से उनका विवाह हुआ। पत्नी के उपदेश से तुलसी का विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना प्रसिद्ध है। विरक्त होने के बाद वे काशी, चित्रकूट, अयोध्या आदि नाना तीर्थों में भ्रमण करते रहे। अयोध्या में ही १५७४ ई० में उन्होंने 'रामचरितमानस' लिखना आरंभ किया था। काशी में उन्हें लोगों ने बहुत तंग किया था। काशी में ही उन्होंने भयंकर महामारी के प्रकोप से लोगों को तड़प-तड़प कर मरते देखा। जीवन के अंतिम दिनों में वे भी अनेक व्याधियों से पीड़ित रहे—कभी बाहु-शूल, कभी अम्ल-पित्त, कभी प्लेग और कभी 'घोर बरतोर'। ऐसी ही किसी व्याधि से १६२३ ई० में वे साकेतवासी हुए।

तुलसीदास व्यापक मानवता के कवि हैं। कबीर, जायसी और सूर की तुलना में तुलसी का भावक्षेत्र अधिक व्यापक है। मानव-प्रकृति के बारे में उनका ज्ञान बड़ा ही सूक्ष्म और गहन था। इसीलिए वे 'रामचरितमानस' में जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन कर सके हैं। इनमें उनके 'हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की शक्ति' और मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावन-क्षमता पूरे उत्कर्ष के साथ व्यक्त हुई है। तुलसी की रामकथा वस्तुतः मानव-जीवन की गाथा है।

'मानस' में जिन प्रसंगों का विस्तार संभव न था उन्हें तुलसी ने 'कवितावली' और 'गीतावली' में स्थान दिया है। 'विनयपत्रिका' में विनय और आत्मनिवेदन के पद हैं। तुलसीदास की लगभग १२ कृतियों में से ये चार कृतियाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन कृतियों में एक ऐसे व्यक्ति की तसवीर उभरती है जिसमें विनम्र भाव के साथ-साथ अनुभूति की ईमानदारी है और जिसका अपने आराध्य के प्रति अटूट विश्वास है। "ऐसी एकनिष्ठ भक्ति, ऐसा अनन्य विश्वास और इतनी अखंड आस्था संसार के इतिहास में दुर्लभ है।"

तुलसीदास का यथार्थबोध काफी गहरा था। अपनी कृतियों—विशेष रूप से 'कवितावली' में उन्होंने जिस भुखमरी, महामारी और गरीबी का चित्रण किया है उससे वे स्वयं गुजरे थे। तभी तो वे लिख सके—"जाठि बड़वाग्नि से बड़ी है आगि पेट की।" या 'दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु, दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी।' मर्मांतक पीड़ा ने अंत तक उनका पीछा नहीं छोड़ा—'पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर, जर्जर, सकल सरीर पीरमयी।' तुलसी ही क्यों, उन जैसे लाखों लोग इन कष्टों और आपदाओं से पीड़ित थे। तुलसी ने उन भावों को वाणी देकर अपनी लोकवादिता को मजबूत आधार प्रदान किया। वे सच्चे अर्थों में व्यापक मानवीय करुणा के कवि हैं।

ग्रामवासियों के बीच वनवासी राम

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी॥
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देही। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

दो०—एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहिं कि प्रात॥१॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी॥
जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चन्द चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल॥२॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥
राम लखन सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥
थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥
स्वामिनि अविनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह ते लही दुति मरकत सोने॥

दो०—स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नैन ॥३॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥
तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बर बरनी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निजपति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी॥

दो०—अति सप्रेम सिय पायँ परि, बहुविधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महिं अहि सीस ॥४॥

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥
दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनी कौमुदीं पोषीं॥
तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥
मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥

दो०—लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिए लाइ मन साथ ॥५॥

फिरति नारि नर अति पछिताही। दैअहि दोषु देहि मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥
जौ पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि-रचि श्रमु कीन्हा॥

दो०—जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किए करतार ॥६॥

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥
इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

दो०—एहि बिधि कहि-कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥७॥

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥
परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौ जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥
जो भागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई।
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम फलु पाई॥

दो०—अबला बालक बृद्ध जन, कर मीजहिं पछितांहि।
होहिं प्रेमबस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहिं ॥८॥

गाँव-गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चन्दू॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाईं। बातें सरल सनेह सुहाईं॥
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥

सुखु पायउ बिरंचि-रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही।
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

दो०—एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय सौमित्र समेत॥ ६॥

—रामचरित मानस

आत्म-परिचय

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सौं बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ॥
'तुलसी' सरनाम गुलाम है रामको, जाको रुचै सो कहौ कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एकु न दैबे को दोऊ॥

युग-परिचय

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहनबन अहन अखेट की॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥ २॥

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सो "कहाँ जाई, का करी?"

बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै, राम रावरे कृपा करी ।
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु !
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ।। ३ ।।

—कवितावली

बाल राम

रघुबर बाल छबि कहौं बरनि ।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभाहरनि ।।१।।

बसी मानहु चरन कमलनि, अरुनता तजि तरनि ।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन, हरति रुनझुनु करनि ।।२।।

मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरति भूषन भरनि ।
जनु सुभग सिंगार सिसु-तरु, फर्‌यो है अद्‌भुत फरनि ।।३।।

भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि ।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ।।४।।

लसत कर प्रतिबिम्ब मनि, आँगन घुटुरुवनि चरनि ।
जलज-संपुट सुछबि भरि-भरि, धरनि जनु उर धरनि ।।५।।

पुन्यफल अनुभवति सुतहि, बिलोकि दसरथ धरनि ।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु, किलकिनि ललित लरखरनि ।।६।।

दूलह राम

दूलह राम, सीय दुलही री !
घन-दामिन-बर बरन, हरन-मन सुन्दरता नखसिख निबही, री ।।१।।
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्‌यो आजु सही, री ।।२।।

सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि, मयन अमिय-मय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय राम सँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥३॥

तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा, अतुल न जाति कही, री।
रूप रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति काम लही, री ॥४॥

चित्रकूट

फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल
ललित-लता-जाल हरति छबि बितान की।
मंदाकिनि तटिनि तीर मंजुल भृंग बिहग भीर,
धीर मुनिगिरा गम्भीर सामगान की ॥

मधुकर पिक बरहि मुखर, सुन्दर गिरि निर्झर झर,
जल-कन घन छाँह, छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचबान की ॥ २ ॥

बिरचित तहं पर्नसाल, अति बिचित्र लषन लाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल रचित सयन
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान की ॥ ३ ॥

सिय संग लिखें धातुराग, सुमननि भूषन-विभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधान की।
माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसिदास,
बसनि हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥ ४ ॥

धनुर्धर राम

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन, बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों, नव घन सुधा-सरोवर खोरे ॥

ललित कंठ, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख, लेत सरद-ससि की छबि छोरे॥
जटा मुकुट सिर सारस-नयननि, गाँहैं तकत सुभोह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे।
चितवन चकित कुरंग कुरंगिनि, सब भए मगन मदन के भोरे॥
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे॥

अयोध्या वापसी

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं, सोने चोंच मढैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं।
अवधि समीप जानि जननी जिय, अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति, प्रेम-मगन मृदु बानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तैं, समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मृत जल पायो॥

—गीतावली

विनय

अस कछु समुझि परत रघुराया!
बिनु तव कृपा दयालु दासहित, मोह न छूटै माया॥
बाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन, भवपार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन, तम निवृत्त नहिं होई॥
जैसे कोउ इक दीन दुखी अति, असन-हीन दुख पावै।
चिंतत कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न बिपति नसावै॥

षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखाने।
बिनु बोले सन्तोष जनित सुख, खाइ सोइ ते जाने॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय-आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जगजोनि भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं॥१॥

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँताप तई है।
देव-दुबार पुकारत आरत सब की सब सुखहानि भई है॥
प्रभु के बचन बेद बुध संमत मम मूरति महिदेव भई है।
तिन्हकी मति रिस, राग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु बाद हठि हेरि हई है॥
आस्रम-बरन-धरम बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है॥
परमारथ स्वारथ साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि गोभर-बिबस विकल, जामत न बई है॥
कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जाने चित कहा ठई है॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है।
सरूष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है॥
दीजे दादि देखि ना तौ बलि; मही-मोद मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम कृपा चितवनि चितई है॥
बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि करुना-बारि भूमि भिजई है।
राम राज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत बिजई है॥
समरथ बड़ी सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है॥
उथपे-थपन, उजार-बसावन, गई बहोर बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु-आरत-आरतिहर अभय बाँह केहि केहि न दई है? ॥२॥

रघुपति ! भक्ति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार, जानै सोई जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुसलता कहँ, सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥
ज्यों सर्करा मिले सिकता महँ, बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी ॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन, संसयनिर्मूल न जाहीं ॥३॥

—विनयपत्रिका

प्रश्न और अभ्यास

१. वन-मार्ग में जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता के रूप-सौंदर्य का चित्रण कीजिए ।

२. ग्रामीण स्त्रियाँ सीता से क्या पूछती हैं? सम्बन्धित अंश का भाव-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए ।

३. तुलसी ने दूल्हा के रूप में राम और दुल्हन के रूप में सीता के सौंदर्य का जो वर्णन किया है उसे अपने शब्दों में लिखिए ।

४. 'कवितावली' के अंशों के आधार पर तत्कालीन समाज की दशा का चित्रण कीजिए ।

५. राम के वन से आने के पूर्व माता कौशल्या की आकुलता का वर्णन कीजिए ।

६. 'विनयपत्रिका' से संकलित पदों के आधार पर तुलसी की भक्ति भावना का विवेचन कीजिए ।

७. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए :

(क) जटा मुकुट सीसनि सुभग, उरभुज नैन बिसाल ।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल ॥

(ख) इन्हहिं देखि विधि मनु अनुरागा।
पटतर जोग बनावै लागा।
कीन्ह बहुत स्रम एक न आए।
तेहि इरषा बन आनि दुराए।

(ग) प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो।

(घ) दीन दयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।

८. निम्नोक्त पंक्तियों में आए अलंकारों का उल्लेख कीजिए :

(क) दारिद दसानन दवाई दुनी दीन बन्धु।
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी।

(ख) भुजनि भुजग सरोज नयननि बदन
बिधु जित्यौ लरनि।

(ग) मथि माखन सिय राम सँवारे सकल भुवन
छबि मनहु मही री।

(घ) स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों
नव घन सुधा-सरोवर खोरे।

९. बाल-वर्णन के आधार पर सूर और तुलसी की भाषा-सामर्थ्य का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

निबन्ध लिखिए

: ५ :

बिहारीलाल

बिहारीलाल (१६००-१६६३ ई०) का जन्म ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्द-पुर नामक ग्राम में हुआ था। इनका बचपन बुन्देलखंड में बीता। युवा होने पर वे मथुरा चले गए और वहाँ साहित्य-संगीत के प्रति इनके मन में अनुराग पैदा हुआ। बिहारी की कविता की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। मिर्जा राजा जयसिंह के आमंत्रण पर वे उनके दरबार में चले गए और वहीं उन्होंने 'सतसई' की रचना की। यही एकमात्र कृति बिहारी की इतनी बड़ी कीर्ति का आधार है।

बिहारी की कविता में मुक्तक रचना अपने चरम उत्कर्ष को पहुँची। मुक्तक रचना में सफलता प्राप्त करने के लिए थोड़े में बहुत कहने का गुण होना चाहिए। बिहारी में मितकथन का यह गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इसी से वे दोहे जैसे छोटे छंद में इतना अर्थ-चमत्कार दिखा सके हैं और इस प्रकार गागर में सागर भर सके हैं। 'सतसैया' की सफलता का यही रहस्य है।

बिहारी बड़े सजग कलाकार हैं। उनके अनेक दोहों पर दरबारी वातावरण की छाप स्पष्ट है। इसीलिए उनके प्रेम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है उसे सामान्य लोकरुचि का पर्याय नहीं माना जा सकता। उनका महत्व इस बात में है कि उन्होंने जगह-जगह इस अभिरुचि का अतिक्रमण करने की कोशिश की है। ऐसे स्थलों पर लगता है कि उनकी कृति 'गाथासप्तशती', 'अमरुकशतक' और 'आर्या-सप्तशती' की परंपरा की ही एक कड़ी है क्योंकि वहाँ प्रेम और सौंदर्य के सहज रूप का मार्मिक चित्रण हुआ है। इसीलिए ऐसे दोहों में मानस लोक की रमणीयता के दर्शन होते हैं।

सौन्दर्य

अधर धरत हरि कें परत, ओठ डीठि-पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष-रँग होति ॥१॥

सोहत ओढ़ें पीत पट, स्याम, सलोनें गात।
मनौं नीलमनि-सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात ॥२॥

छिप्यो छबीलौ मुँह लसै, नीलें अंचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिन्दी कें नीर ॥३॥

अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥४॥

झीनें पट में झुलमुली, झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिन्धु में, लसति सपल्लव डार ॥५॥

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहूनु मिलि, दिपति ताफता रंग ॥६॥

सहज सेत पँचतोरिया, पहिरत अति छबि होति।
जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन-जोति ॥७॥

शृंगार

जहाँ-जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु ॥८॥

स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवन करति तरौंस कौ, खिनकु खरौंहौं नीरु ॥९॥

बिकसित नवमल्ली कुसुम, निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरह-हिय, बरसि रहे की बाइ ॥१०॥

लग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हियें, दई नई यह रीति ॥११॥

इन दुखिया अँखियान कों, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखतें, अनदेखें अकुलाहिं ॥१२॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥१३॥

हौं हीं बौरी बिरह-बस, कै बौरी सब गाउँ।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीतकर-नाउँ ॥१४॥

कहा भयौ, जौं बीछुरे, मो मनु तो मन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥१५॥

टटकी धोई धोवती, चटकीली मुख-जोति।
लसति रसोई कैं बगर, जगरमगर दुति होति ॥१६॥

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥१७॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सौं बात ॥१८॥

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनि हँसैं, दैन कहैं नटि जाइ ॥१९॥

नीति

चटक न छाँड़तु घटत हूँ, सज्जन नेहु गँभीरु।
फीको परै न, बरु फटै, रंग्यौ चोल रँग चारु ॥२०॥

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि, गने लोग उतपातु ॥२१॥

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥२२॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रबि-चंदु ॥२३॥

झूठे जानि न संग्रहे, मन मुँह-निकसे बैन।
याही तें मानहु किये बातनु कौं बिधि नैन ॥२४॥

पटु पांखैं, भखु काँकरै, सदा परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि में, एकै तुहीं बिहंग ॥२५॥

—बिहारी सतसई

प्रश्न और अभ्यास

१. निम्नलिखित अंशों का भाव-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए :
(क) बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु दृगन अजौं वह ठौरु।
(ख) देखत बनै न देखते अनदेखे अकुलाहि।
(ग) वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान।
(घ) सौंह करैं भौंहनि हँसै दैन कहै नटि जाइ।

२. उत्प्रेक्षा और उपमा में क्या अंतर है? इस पाठ में से दोनों के कुछ उदाहरण छाँटिए और उनकी सहायता से उत्तर स्पष्ट कीजिए।

३. असंगति अलंकार का लक्षण देकर इस पाठ से उसके उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

४. कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर भर दिया'—उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।

———

: ६ :

मतिराम

मतिराम (१६०३-१७०१ ई०) का जन्म कानपुर जिले के टिकमापुर गाँव में हुआ था। ये प्रसिद्ध कवि भूषण के भाई थे। उनका अधिकांश समय बूँदी दरबार में व्यतीत हुआ। उनकी चार रचनाएँ मिलती हैं—'फूलमंजरी', 'रसराज', 'ललित-ललाम' और 'सतसई'। इनमें 'रसराज' और 'ललितललाम' अधिक प्रसिद्ध हैं।

यों तो मतिराम रीतिबद्ध कवियों के अन्तर्गत आते हैं किन्तु उनकी कविता कृत्रिमता से कोसों दूर है। उनमें न भावों की कृत्रिमता है न भाषा की। अन्य रीतिबद्ध कवियों की तरह दूर की कौड़ी के फेर में वह नहीं पड़े। सहज प्रेम के मर्मस्पर्शी चित्रों में जो भाव व्यक्त किए गए हैं वे हम सभी की सामान्य अनुभूति के अंग हैं। इन अनुभूतियों में जगह-जगह वचन-वक्रता से भाषा में गति और नाटकीयता का समावेश हुआ है। वाग्वैदग्ध्य बिहारी में भी है लेकिन दोहे की अपेक्षा मतिराम ने कवित्त-सवैयों में नाद सौन्दर्य और अर्थ-विधान की संभावनाओं का काफी हद तक सार्थक उपयोग किया है। ब्रजभाषा काव्य में ऐसी अकृत्रिम सरसता बहुत कम कवियों में मिलेगी।

मतिराम के सवैयों की विशेषता यह है कि जहाँ अन्य कवि केवल अन्तिम चमत्कारपूर्ण चरण के लिए शेष तीन चरणों का पूरक विधान किया करते थे, मतिराम के सवैये चमत्कार के फेर में न पड़कर समग्रता में प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इसीलिए सहज कवित्व की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों में मतिराम का स्थान बहुत ऊँचा है।

सौन्दर्य और शृंगार

मोर पखा मतिराम किरीट में, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल डोलनि में छबि छाई।
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को, न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौ मीठी लगे अँखियान लुनाई ॥१॥

कुन्दन को रंग फीको लगे, झलके अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में, मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई ॥२॥

जमुना के तीर बहै सीतल समीर जहाँ,
मधुकर करत मधुर मन्द सोर हैं।
कवि मतिराम तहाँ छबि सों छबीली बैठी,
अंगन तें फैलत सुगन्ध के झकोर हैं।
पीतम बिहारी की निहारिबे को बाट ऐसी,
चहुँ ओर दीरघ दृगन करि दौर हैं।
एक ओर मीन मनों, एक ओर कंजपुंज,
एक ओर खंजन चकोर एक ओर हैं ॥३॥

जा दिन ते छबि सों मुसुकान कहूँ, निरखे नन्दलाल बिलासी,
ता दिन ते मन-ही-मन में 'मतिराम' पियै मुसकानि सुधा-सी।
नेकु निमेष न लागत नैन, चके चितवै तिय देव-तिया-सो।
चन्द-मुखी न चलै, न हिलै, निरबात निवास में दीप-सिखा-सी ॥४॥

बेलिन सों लपटाय रही हैं, तमालन को अवली अति कारी,
कोकिल कूक, कपोतन के कुल, केलि करैं अति आनंदवारी।
सोच करै जनि, होहु सुखी, 'मतिराम' प्रबीन सबै नर-नारी,
मंजुल बंजुल कुंजन के घन, पुंज सखी, ससुरारि तिहारी ॥५॥

"निसि-दिन स्रौनन पियूष-सों पियत रहैं,
छाय रह्यौ नाद बाँसुरी के सुर-ग्राम को,
तरनि-तनूजा-तीर, बन-कुंज, बीथिन में,
जहाँ-तहाँ देखियत रूप छबि-धाम को।
कवि 'मतिराम' होत हौं तो ना हिए तें नेक,
सुख प्रेम-गात को परस अभिराम को
ऊधो, तुम कहत बियोग तजि जोग करौ,
जोग तब करैं, जो बियोग होय स्याम को ॥६॥

—मतिराम ग्रन्थावली

प्रश्न और अभ्यास

१. पहले सवैये के आधार पर श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अन्तिम पंक्ति के विरोधाभास को स्पष्ट कीजिए।

२. 'चन्द मुखी न चलै न हिलै निरबात निवास में दीपसिखा-सी'—पंक्ति में अलंकार-निरूपण कीजिए।

३. व्याख्या कीजिए :
(क) ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैंन्नि त्यों त्यों खरी निखरै-सी निकाई।
(ख) एक ओर मीन मनों, एक ओर कंज-पुंज, एक ओर खंजन, चकोर एक ओर हैं।
(ग) मंजुल बंजुल कुंजन के घन पुंज सखी, ससुरारि तिहारी।

४. अन्तिम कवित्त के आधार पर बताइए कि गोपी योग की आवश्यकता क्यों नहीं समझती ?

५. बिहारी और मतिराम के शृंगार-वर्णन की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

———

: ७ :

देव

महाकवि देव (१६७३-१७६७ ई०) का जन्म इटावा में हुआ था। औरंगजेब के पुत्र आजमशाह के संपर्क में आने के बाद देव कुछ दिन भवानीदत्त वैश्य और फिर फफूँद के राजा के आश्रय में रहे। लेकिन वहाँ वे टिक न सके। उन्हें सबसे ज्यादा सन्तुष्टि अपने आश्रयदाता भोगीलाल के यहाँ प्राप्त हुई जिन्होंने इनके काव्य से प्रसन्न होकर इन्हें लाखों की सम्पत्ति दान की। इनके ग्रंथों की संख्या ५२ से लेकर ७२ तक बतलाई जाती है। ग्रंथों की संख्या अधिक होने का एक कारण तो यह है कि ये पुरानी रचनाओं के क्रम में ही थोड़ा-बहुत हेर-फेर कर नया ग्रंथ बना डालते थे। इसलिए कुछ रचनाओं में तो नाममात्र का अंतर है।

देव बड़े ही प्रतिभासम्पन्न कवि थे। लेकिन दरबारी अभिरुचि से बंधे होने के कारण उनकी कवित्व-शक्ति अपेक्षित रूप में विकसित न हो सकी। इसी वजह से उनमें शब्दों का अपव्यय अधिक है, अर्थ कम। इस रुचि से मुक्त होने पर उन्होंने सरल काव्य रचना की है और प्रेम तथा सौंदर्य के मार्मिक चित्र खींचे हैं। अनुप्रास द्वारा ध्वनिचित्र खड़ा करने में उन्हें विशेष महारत हासिल है। ऋतु वर्णन में अनुप्रास का यह ठाठ देखते ही बनता है।

देव कभी-कभी रीतिकालीन वातावरण की सीमा का अतिक्रमण करके भावों की उदात्त भूमि पर पहुँचने में सफल हो जाते हैं। इससे उनकी विपुल कल्पना-शक्ति का आभास मिलता है। सम्भवतः इसी कारण कुछ आलोचक देव को रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। 'देव बनाम बिहारी' विवाद के मूल में संभवतः यही प्रेरणा काम कर रही थी। जो हो, इसमें कोई शक नहीं कि देव बिहारी के समान ही रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाने के अधिकारी हैं।

रूप और शृंगार

पायनि नूपुर मंजु बजे, कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसे पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मन्द हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर, श्रीब्रजदूलह देव सहाई ॥१॥

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावे 'देव',
कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करे राई नोन,
कंजकली नायिका लतान सिर सारी दै।
मदन महीपजू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ॥२॥

हौं ही ब्रज बृन्दावन मोही में बसत सदा,
जमुना तरंग स्याम रंग अवलीन की।
चहूँ ओर सुन्दर सघन बन देखियत,
कुंजनि में सुनियत गुंजनि अलीन की।
बंसीबट तट नट नागर नटत मो में,
रास के बिलास की मधुर धुनि बीन की।
भरि रही झनक-झनक ताल तानि की,
तनक-तनक तामें झनक चुरीन की ॥३॥

साँसनि ही सों समीर गयो अरु, आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तन की तनुता करि॥
'देव' जिये मिलिबेही की आस कि, आसहू पास अकास रह्यो भरि,
जा दिन तें मुख फेरि हरै हँसि, हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ॥४॥

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमड़ि आयो,
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संग मैं।
कारे कारे कागर लिखे ज्यों कारे आखर,
सु न्यारे करि बाँचै कौन नाचै चित भंग में॥
ननिन में तिमिर अमावस की रैनि अरु,
जम्बू रस बिन्दु जमुनाजल तरंग में।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्क्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग में॥५॥

फटिक सिलानि सौं सुधार्यो सुधा मंदिर,
उदधि दधि को सो अधिकाइ उमगे अमंद।
बाहर ते भीतर लौं भीति न दिखैए देव,
दूध को सो फेन फैल्यो आँगन फरसबंद।
तारा सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिली होति,
मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद।
आरसी से अंबर में आभा सी उजारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद॥६॥

—देव-ग्रन्थावली

प्रश्न और अभ्यास

१. 'ब्रज दूलह' कृष्ण के रूप का वर्णन कीजिए।

२. दूसरे कवित्त में सांग रूपक है। नीचे रिक्त स्थानों में सम्बन्धित प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत लिखिए :

(क)	(क) पलना
(ख) नवपल्लव	(ख)
(ग)	(ग) झिंगुला
(घ) पराग	(घ)
(ङ)	(ङ) नायिका
(च) लता	(च)
(छ)	(छ) महीप
(ज)	(ज) बालक

३. 'सांसनि ही सौं समीर गयो'—सवैये में चिन्तित विरहिणी की कृशता का वर्णन कीजिए।

४. 'स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग में'—कवित्त में बताइए कि मन श्याम सुन्दर में किस प्रकार समा गया है ?

५. व्याख्या कीजिए :

(क) आरसी से अंबर में आभा सी उजारो लगै
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चंद।

घनानन्द

घनानंद (१६८९—१७३९ ई०) रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीरमुंशी थे। मुहम्मद शाह एक बार इनके ऊपर नाराज हो गए और इन्हें दरबार से निकाल दिया। वहाँ से वे विरक्त होकर वृन्दावन चले गए और निम्बार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए।

उनकी कविताओं में 'सुजान' नाम का प्रयोग बार-बार हुआ है, बल्कि एक ग्रंथ का नाम ही 'सुजानसागर' है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह नाम व्यक्ति विशेष का सूचक है। लेकिन इससे ईश्वरीय प्रेम का संकेत भी मिलता है। कहा जाता है कि नादिरशाही के दौर में ये मारे गए। इनके ग्रंथों में 'सुजानसागर', 'विरहलीला', 'कोकसार', 'रसकेलिवल्ली' और 'कृपाकांड' मुख्य हैं।

घनानंद 'साक्षात रसमूर्ति' थे। उनकी कविता में प्रेम का बड़ा ही निर्मल भावमय और उदात्त रूप व्यक्त हुआ है। कवि का ध्यान अंतरवृत्ति निरूपण पर है, बाहरी नाप-जोख पर नहीं। जहाँ कहीं रूप-सौंदर्य का वर्णन आया भी है वहाँ उसके प्रभाव का आकलन ही मुख्य है।

घनानंद 'ब्रजभाषा प्रवीण' तो थे ही, 'भाषा प्रवीण' भी थे। उनकी कविता में ब्रजभाषा का बड़ा ही सुथरा रूप देखने को मिलता है। वाक्य विन्यास में तार्किक अनुक्रम है। सशक्त अर्थ-व्यंजना के लिए जगह-जगह विरोधाभास का सहारा लिया गया है। इसीलिए उसमें जीवंत अर्थ वहन करने की अद्‌भुत क्षमता आ गई है।

घनानन्द, निस्सन्देह, बड़े ही विदग्ध और भावप्रवण कवि थे। उन जैसा वाक्-सिद्‌ध और रससिद्‌ध कवि रीतिकाल में दूसरा नहीं हुआ।

सुजान-प्रेम

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छबि-फूलन की, बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग-अँग तरंग उठै-दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धरि च्वै ॥१॥

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्‌यो, सुजान, सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै, घनआनंद, बावरी रीझि के हाथनि हारियै ॥२॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि, यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ॥
ऐसो हियो-हितपत्र पवित्र जु, आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनंद जान अजान लौं, टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥३॥

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं, कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं, अकि पानि परौं, अब कैसी करौं, हिय का विधि धीरौं।
जौ घनआनंद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी में, धँसौं कि अकासहि चीरौं ॥४॥

इन बाँट परी सुधि, राबरे भूलनि, कैसे उराहनो दीजियै जू॥
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनंद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ, तुम्है बाड़ कहा पे असीस हमारियौ लीजियै जू ॥५॥

लरिकाई-प्रदोष में टोड़ लग्यौ, हँसि रोय सु औसर खोय दयौ।
बहुर्‌यौ करि पान विषै-मदिरा तरुनाई तमी मधि सोय गयौ।
तजि के रसमै घनआनंद को जग-धूँधर्‌यौ चातिक नेम लयौ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तें भोर भयौ ॥६॥

—घनानन्द ग्रंथावली

प्रश्न और अभ्यास

१. "झलकै अति सुन्दर आनन गौर·····" सवैये में वर्णित सौंदर्य को स्पष्ट करते हुए बताइए कि रूप की तरलता किस प्रकार दिखाई गई है ?

२. 'हियो हित-पत्र'—में क्या लिखा गया है ? सुजान ने अजान का क्या कार्य किया ?

३. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए :
(क) अँग-अँग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप अबै धरि च्वै।
(ख) बावरी रीझि के हाथनि हारिये।
(ग) टूक कियो पर बाँचि न देख्यौ।
(घ) केसनि और ते भोर भयौ।

४. इस पाठ में से यमक अलंकार के कुछ उदाहरण छाँटिए।

५. नीचे बाईं ओर रूपकों के प्रस्तुत लिखे हुए हैं। प्रत्येक के सामने सम्बन्धित अप्रस्तुत लिखिए।

(क) छवि	(क)
(ख) हियौ	(ख)
(ग) विषै	(ग)
(घ) तरुनाई	(घ)

६. रूप वर्णन के आधार पर देव और घनानन्द का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

———

: ६ :

पद्माकर

पद्माकर (१७५३—१८३३ ई०) रीतिकाल के अंतिम श्रेष्ठ कवि थे। वे जाति के तैलंग ब्राह्मण थे और बाँदा निवासी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। इनके परिवार का वातावरण कवित्वमय था। इनके पिता के अलावा इनके कुल के अन्य लोग भी कवि थे, अतः इनके वंश का नाम ही 'कवीश्वर' पड़ गया था। वे अनेक राज-दरबारों में रहे। बूँदी दरबार की ओर से उन्हें बहुत सम्मान, दान आदि मिला। पन्ना-महाराज ने इन्हें बहुत से गाँव दिए। जयपुर नरेश से इन्हें 'कविराज शिरोमणि' की उपाधि मिली। इनकी रचनाओं में 'हिम्मतबहादुर विरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद' और 'राम रसायन' मुख्य हैं।

पद्माकर ने सजीव मूर्त्तविधान करने वाली कल्पना के सहारे प्रेम और सौंदर्य का मार्मिक चित्रण किया है। जगह-जगह लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावानुभूतियों को सहज ही मूर्तिमान कर देते हैं। इनके ऋतु-वर्णन में भी इसी जीवंतता और चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं। भाषा इनकी चलती हुई है और अर्थ के अनुरूप स्वरूप धारण करती चलती है। अनुप्रास द्वारा ध्वनिचित्र खड़ा करने में वे अद्वितीय हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी भाषागत शक्ति और अनेकरूपता की तुलना तुलसीदास की भाषागत विविधता से की है। यह उनके काव्य की बहुत बड़ी शक्ति की ओर संकेत करता है।

प्रकृति एवं शृंगार

औरै भाँति कुंजन में गुंजरत भीर भौंर,
औरै डोर झौरन पै बौरन के ह्वै गए।
कहै पद्माकर सु औरै भाँति गलियानि,
छलिया छबीले छैल औरे छबि छ्वै गए।
औरे भाँति बिहग-समाज में अवाज होति,
ऐसे रितुराज के न आज दिन द्वै गए।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गए ॥१॥

चंचला चलाकैं चहूँ ओरन तें चाहभरी,
चरजि गई तीं फेरि चरजन लागीं री।
कहै पद्माकर लवंगन की लोनी लता,
लरजि गई तीं फेरि लरजन लागीं री।
कैसे धरौं धीर वीर त्रिबिधि समीर तन,
तरजि गई तीं फेरि तरजन लागीं री।
घुमड़ि घुमड़ि घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गई तीं फेरि गरजन लागीं री ॥२॥

गोकुल के कुल के गली के गोप गाउन के
जौ लगि कछू-को-कछू भाखत भनै नहीं।
कहै पद्माकर परोस-पिछवारन के,
द्वारन के दौरि गुन-औगुन गनैं नहीं।
तौ लौं चलि चतुर सहेली याहि कोऊ कहूँ,
नीके कै निचौरे ताहि करत मनै नहीं।
हौं तो स्याम-रंग में चुराइ चित चोराचोरी,
बोरत तौं बोर्‌यो पै निचोरत बनै नहीं ॥३॥

फाग के भीर अभीरन तें, गहि गोबिन्द लै गई भीतर गोरी।
माई करी मन की पदमाकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीन पितम्बर कम्मर तें, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कही मुसकाइ, लला फिरि आइयौ खेलन होरी ॥४॥

चाली सुनि चन्दमुखी चित्त में सु चैन करि,
तित बन बागनि घनेरे अलि घूमि रहे।
कहै पदमाकर मयूर मंजु नाचत हैं,
चाह सों चकोरिन चकोर चूमि चूमि रहे।
कदम अनार आम अगर असोक थोक,
लतनि समेत लौने-लौने लगि झूमि रहे।
फूलि रहे, फलि रहे, फैलि रहे फबि रहे,
झपि रहे झालि रहे, झुकि रहे झूमि रहे ॥५

भौंरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में
मंजुल मलारन को गावनो लगत है।
कहैं पदमाकर गुमानहूँ तें मानहुँ तें
प्रानहूँ तें प्यारो मनभावनो लगत है।
मोरन को सोर घनघोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को बृन्द छवि छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है ॥६॥

—पद्माकर-ग्रंथावली

प्रश्न और अभ्यास

१. पद्माकर द्वारा चित्रित बसंत और वर्षा ऋतु का सौंदर्य-निरूपण कीजिए।

२. 'पद्माकर के काव्य में अनुप्रास योजना की छटा दर्शनीय है'—उक्त कथन की यथार्थता सोदाहरण सिद्ध कीजिए।

३. 'औरे' भाँति कुंजनि में गुंजरत भीर' भौंर 'औरे' की आवृत्ति से अर्थ में क्या विशिष्टता उत्पन्न हो गई है?

४. पद्माकर के फाग-वर्णन में चित्रित भाव-सौंदर्य पर टिप्पणी लिखिए।

५. अंतिम कवित्त में किस भाव का चित्रण हुआ है?

६. पद्माकर की भाषा शैली वस्तु-वर्णन और भाव-चित्रण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

७. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए :

(क) औरे रस औरे रीति औरे राग औरे रंग औरे
तन औरे मन औरे बन ह्वै गए।

(ख) हौं तो स्याम रंग में चुराइ चित्त चोरा-चोरी
बोरत तौ बोरयो पै निचोरत बनै नहीं।

: १० :

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त (१८८६-१९६४ ई०) का जन्म चिरगाँव झाँसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य-परिवार में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण राम-भक्त थे तथा काव्य में रुचि भी लेते थे। इसलिए रामभक्ति और काव्य-रचना की प्रवृत्ति इन्हें पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। ये बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही तुक-बंदियाँ करने लगे थे और दोहा, छप्पय आदि लिख लिया करते थे। इनकी कविता में देश-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम की व्यंजना की प्रमुखता होने के कारण इन्हें 'राष्ट्रकवि' का सम्मान दिया गया। ये बहुत लम्बे समय तक संसद के मनोनीत सदस्य रहे।

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। बाद में आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से उन्होंने ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली को अपनी कविता की भाषा बनाया। 'सरस्वती' में गुप्त जी की पहली कविता 'हेमन्त' १९०५ ई० में छपी। फिर तो वे 'सरस्वती' परिवार के स्थायी सदस्य बन गए और खड़ी बोली के प्रतिनिधि कवियों में उनकी गणना होने लगी।

गुप्त जी का पहला कविता संग्रह 'रंग में भंग' (१९१० ई०) है। इसी वर्ष 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) छपा। लेकिन गुप्त जी को हिन्दी भाषी जनता का प्रतिनिधि कवि बनाने में 'भारत-भारती' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस रचना के माध्यम से उन्होंने देशवासियों में जातीय गौरव का भाव उभारा, उन्हें उनकी वर्तमान अधोगति से परिचित कराया और उनके मन में भविष्य के निर्माण की प्रेरणा का संचार किया।

गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में कथन का रूखापन है। पद्य में लिखी गई इन कथाओं में भावात्मक सरसता का अभाव है। छायावाद के आगमन के कारण गुप्त जी की कविता में लाक्षणिक वचित्र्य और मनोभावों की सूक्ष्मता एवं मार्मिकता आ गई है। प्रबन्ध के भीतर ही गीत-काव्य का समावेश करके गुप्त जी ने भाव-सौन्दर्य के मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण—'यशोधरा' और 'साकेत'-जैसी काव्य-कृतियों का सृजन किया।

गुप्त जी अधिकांशतः भारतीय पुराण कथाओं के आधार पर काव्य-सर्जना करते हुए भी उसमें सम-सामयिक जीवन की ऊष्मा और मानवीय भावना का समावेश करते हैं तथा अतिमानवीयता और अलौकिकता से बचे रहे हैं। नारी के

प्रति गुप्त जी का हृदय सहानुभूति और करुणा से ओत-प्रोत है। उन्होंने भारतीय इतिहास की कई उपेक्षिता नारी पात्रों को उभारा है। 'साकेत' की उर्मिला इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

सरल अभिव्यक्ति उनकी सबसे पहली और सबसे प्रधान विशेषता है। इस सारग्रही सरलता के साथ गुप्त जी की आदर्शवादी दृष्टि भी विद्यमान रहती है और आदर्शवादिता में उदात्तता उतनी नहीं होती जितनी भावुकतामय नैतिकता होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुप्त जी के बारे में लिखा है कि "गुप्त जी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने (या झीमने) वाले कवि नहीं! सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त है। प्राचीन के प्रति पूज्य-भाव और नवीन के प्रति उत्साह; दोनों इनमें हैं।"

(क) यशोधरा का विरह गीत

सखि, वसन्त-से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय ! विभूति रमाने का भी मैंने योग न पाया।
सूखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया।

मेरा ताप और तप उनका,
जलती है हा ! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

जागी किसकी वाष्पराशि, जो सूने में सोती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी ?
अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी।

किसके भरे हृदय की धारा,
शतधा होकर आज बही ?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में,
नाच उठी आशा प्रति दल पर किरणों की झल-झल में,
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल-कल में।

पर मेरे मध्याह्न ! बता क्यों
तेरी मूर्छा बनी वही ?

मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

हेम पुंज हेमंतकाल के इस आतप पर वारूँ,
प्रियस्पर्श की पुलकावलि में कैसे आज विसारूँ ?
किन्तु शिशिर, ये ठण्डी साँसें हाय ! कहाँ तक धारूँ ?
तन गारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ?

मेरी बाँह गही स्वामी ने
मैंने उनकी छाँह गही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड-से घर-घर में है जागे,
मेरे कम्प, हाय ! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।

पानी जमा, परंतु न मेरे
खट्टे दिन का दूध-दही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तंतु कब टूटे ?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे !
स्वामी के सद्भाव फैलकर फूल-फूल में फूटे !
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

उनके श्रम के फल सब भोगें
यशोधरा की विनय यही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

—यशोधरा

(ख) सीता का उटज गीत

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहाँ,—यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।

सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

क्या सुन्दर लता-वितान तना है मेरा,
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा।
जल निर्मल, पवन पराग-सना है मेरा,
गढ़ चित्रकूट दृढ़-दिव्य बना है मेरा।

प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम वारिविन्दु फल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।

तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं,
जी भरकर उनको देख जुड़ा जाते हैं।
जब देव कि देवर विचर-विचर आते हैं,
तब नित्य नए दो-एक द्रव्य लाते हैं।

उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

किसलय-कर स्वागत-हेतु हिला करते हैं,
मृदु मनोभाव-सम सुमन खिला करते हैं।
डाली में नव फल नित्य मिला करते हैं,
तृण-तृण पर मुक्ता-भार झिला करते हैं।

निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा।

वह बधू जानकी बनी आज यह जाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

फल-फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी,
वे हरी पत्तलें, भरी थालियाँ मेरी।
मुनि बालाएँ हैं यहाँ आलियाँ मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी।

क्रीड़ा-सामग्री बनी स्वयं निज छायां,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

मैं पली पक्षिणी विपिन-कुंज-पिंजर की,
आती है कौटर-सदृश मुझे सुध घर की।
मृदु-तीक्ष्ण वेदना एक एक अंतर की,
बन जाती है कल-गीति समय के स्वर की।

कब उसे छेड़ यह कण्ठ यहाँ न अघाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

गुरुजन-परिजन सब अन्य ध्येय है मेरे,
ओषधियों के गुण-विगुण ज्ञेय हैं मेरे।
यत-देव-देवियाँ आतिथेय हैं मेरे,
प्रिय-संग यहाँ सब प्रेय श्रेय हैं मेरे।

मेरे पीछे ध्रुव-धर्म स्वयं ही धाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृंग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।

तितली, तूने यह कहाँ चित्रपट पाया?
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

आओ कलापि, निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।

शुक, पढ़ो,—मधुर फल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

अयि राजहंसि, तू तरस तरस क्यों रोती,
तू शुक्ति-वंचिता कहीं मैथिली होती।
तो श्यामल तनु के श्रमज-बिन्दुमय मोती,
निज व्यजन-पक्ष से तू अँकोर सुध खोती,

जिन पर मानस ने पद्म-रूप मुँह बाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

ओ निर्झर, झर झर नाद सुनाकर झड़ तू,
पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ, बढ़-अड़ तू।
ओ उत्तरीय, उड़, मोद-पयोद, घुमड़ तू,
हम पर गिरि-गद्गद भाव, सदैव उमड़ तू।

जीवन को तूने गीत बनाया, गाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओ,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ।

लो, मेरा नागर भाव भेंट जो लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त-संचय में।
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।

निकले फूलों का रंग, ढंग से ताया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

—साकेत

(ग) नहुष का पतन

मत्त-सा नहुष चला बैठ ऋषियान में,
व्याकुल से देव चले साथ में, विमान में।
पिछड़े तो वाहक विशेषता से भार की,
आरोही अधीर हुआ प्रेरणा से मार की!

"दीखता है कठिन मुझे तो मार्ग कटना,
यह बढ़ना है तो कहूँ मैं किसे हटना?
बस क्या यही है बस, बैठ विधियाँ गढ़ो?
अश्व से अड़ो न अरे, कुछ तो बढ़ो।"

बार बार कन्धे फेरने को, ऋषि अटके,
आतुर हो राजा ने सरोष पैर पटके।
क्षिप्त पद हाय! एक ऋषि को जो जा लगा,
सातों ऋषियों में महा क्षोभानल आ जगा!

"भार बहें, बातें सुनें, लातें भी सहें क्या हम?
तू ही कह क्रूर, मौन अब भी रहें क्या हम?
पैर था या साँप यह, डँस गया संग ही,
पामर, पतित हो तू होकर भुजंग ही।"

राजा हततेज हुआ शाप सुनते ही काँप,
पीकर जगा गया हो जैसे उसे पीना-साँप!
श्वास टूटने-सी मुख-मुद्रा हुई विकला,
"हा! यह हुआ क्या?" यही व्यग्र वाक्य निकला!

जड़-सा सचिन्त वह नीचा सिर करके,
पालकी का नाल, डूबते का तृण धर के।
शून्य-पट-चित्र हुआ घुलता-सा वृष्टि से।
देखा फिर उसने समक्ष शून्य दृष्टि से।

दीख पड़ा उसको न जाने क्या समीप-सा,
चौंका एक साथ वह बुझता प्रदीप-सा—
"संकट तो संकट, परन्तु यह भय क्या?
दूसरा सृजन नहीं मेरा एक लय क्या?"

सँभला अदम्य मानी खींचकर ढीले अंग—
"कुछ नहीं, स्वप्न था सो हो गया भला ही भंग।
कठिन कठोर सत्य! तो भी शिरोधार्य है,
शान्त हों महर्षि, मुझे शाप अंगीकार्य है।'

दुःख में भी राजा मुसकाया पूर्व-दर्प से—
"मानते हो तुम अपने को डँसा सर्प से।
होते ही परन्तु पदस्पर्श भूल-चूक से,
मैं भी क्या डँसा नहीं गया हूँ दन्दशूक से?

मानता हूँ भूल हुई, खेद मुझे इसका,
सौंपे वही कार्य उसे धार्य हो जो जिसका।
स्वर्ग से पतन, किन्तु गोत्रिणी की गोद में,
और जिस जोन में जो, सो उसीमें मोद में।

काल गतिशील, मुझे लेके नहीं बैठेगा,
किन्तु उस जीवन में विष घुस पैठेगा।
तो भी खोजने का कुछ कष्ट जो उठावेंगे,
विष में भी अमृत छिपा वे कृती पावेंगे।

मानता हूँ, आड़ ही ली मैंने स्वाधिकार की,
मूल में तो प्रेरणा थी काम के विकार की।
मांगता हूँ आज मैं शची से भी खुली क्षमा,
विधि से बहिर्गता भी साध्वी वह ज्यों रमा।

मानता हूँ, भूल गया नारद का कहना—
'दैत्यों से बचाए यह भोगधाम रहना।'
आ घुसा असुर हाय! मेरे ही हृदय में,
मानता हूँ आप लज्जा पाप-अविनय में।

मानता हूँ और सब, हार नहीं मानता,
अपनी अगति नहीं आज भी मैं जानता।
आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
लेके दिखा दूँगा कल मैं ही अपवर्ग भी।

तन जिसका हो मन और आत्मा मेरा है,
चिन्ता नहीं बाहर उजेला या अँधेरा है।
चलना मुझे है, बस अन्त तक चलना,
गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है सँभलना।

गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी?
मैं ही तो उठा था आप, गिरता हूँ जो अभी।
फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं।

चाहें जहाँ मेरे उठने के लिए ठौर है,
किन्तु लिया आज मैंने भार कुछ और है।
उठना मुझे ही नहीं एक मात रीते हाथ,
मेरी देवता भी और ऊँची उठे मेरे साथ।"

—गुप्त

प्रश्न और अभ्यास

१. यशोधरा का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके संताप का कारण बताइए।

२. 'मैंने ही क्या सहा, सभी ने मेरी बाधा-व्यथा सही' का भाव स्पष्ट कीजिए। इस पंक्ति की बार-बार आवृत्ति क्यों हुई है ?

३. वन की कुटी में भी सीता जी राज-भवन का-सा सुख क्यों अनुभव कर रही हैं ?

४. नहुष को सप्त ऋषियों ने क्या शाप दिया और क्यों ?

५. 'नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़ के रहूँगा मैं' पंक्ति में निहित जीवन दर्शन को स्पष्ट कीजिए।

६. निम्नलिखित पंक्तियों में रूपक तथा उपमा को स्पष्ट कीजिए—

(क) श्रम वारि विन्दु फल स्वास्थ्य-शुक्ति फलती हूँ।

(ख) तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया।

(ग) मैं पली पक्षिणी विपिन-कुंज पिंजर की।

(घ) चौंका एक साथ वह बुझता प्रदीप सा।

७. निम्नलिखित पंक्तियों का भावार्थ लिखिए :

(क) तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया।

(ख) उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में।

(ग) मैं पली पक्षिणी विपिन-कुंज-पिंजर की।
आती है कोटर सदृश मुझे सुधि घर की।
मृदु-तीक्ष्ण वेदना एक-एक अन्तर की।
बन जाती है कल-गीति समय के स्वर की।
कब उसे छेड़ यह कठ यहाँ न अघाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

(घ) ओ निर्झर, झर-झर नाद सुनाकर झड़ तू,
पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ बढ़-अड़ तू।
ओ उत्तरीय, उड़, मोद पयोद घुमड़ तू,
हम पर गिरि-गद्‌गद् भाव, सदैव उमड़ तू।
जीवन को तूने गीत बनाया, गाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।

: ११ :

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (१८९०-१९३७ ई०) का जन्म काशी के प्रसिद्ध सूँघनी साहू परिवार में हुआ। इनके पिता बाबू देवीप्रसाद की मृत्यु इनके बाल्यकाल में ही हो गई। इनकी शिक्षा मुख्यतः घर पर ही हुई। संस्कृत साहित्य के प्रति इनके मन में आरंभ से ही गहरा अनुराग था। प्रसाद ने वेद और उपनिषद् के साथ इतिहास, पुराण और दर्शन का गहन अध्ययन किया। प्रसाद जी का बचपन बहुत ही वैभव-विलासपूर्ण वातावरण में बीता। किन्तु बाद में उनके परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई; आत्मीय व्यक्तियों ने धोखा दिया, मुकदमेबाजी हुई। प्रसाद जी पर इस स्थिति का गहरा असर पड़ा। उनकी कविता में जगह-जगह आत्मीयों की प्रताड़ना और छलना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। बारह वर्ष की अल्पायु में ही उनके बड़े भाई का देहान्त हो गया, जिससे परिवार की पूरी जिम्मेदारी प्रसाद पर आ गई। इस जिम्मेदारी को उन्होंने जीवन-पर्यन्त निभाया। उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखमय न रह सका।

प्रसाद पहले ब्रज-भाषा की कविताएँ लिखा करते थे, जो 'चित्राधार' में संग्रहीत हुईं। खड़ी बोली में उनकी मुख्य काव्य-कृतियाँ ये हैं—झरना, आँसू, लहर, कामायनी। प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि नाटक; 'कंकाल', 'तितली' आदि उपन्यास और कई कहानियाँ भी लिखी हैं। 'कामायनी' पर उनको 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' भी प्रदान किया गया है।

छायावादी कविता का वैभव अपनी क्लासिक पूर्णता के साथ प्रसाद की कविताओं में मिलता है। पुनर्जागरणकालीन रचनाकार होने के कारण प्रसाद में अतीत के प्रति एक प्रकार की मोहकता और मादकता भरी आसक्ति मिलती है। प्रसाद मुख्यतः लावण्य के कवि हैं। मोती में आभा के समान शरीर की अन्तः-कान्ति के चित्रण की प्रवृत्ति प्रसाद में है। प्रसाद का सौन्दर्य-बोध इस बात की पुष्टि करता है कि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। प्रसाद के रूप चित्रण में प्राचीन नागर की-सी सुसंस्कृत रसिकता मिलती है।

प्रसाद की रचनाओं में मधु की मिठास है जो उनके आनन्दवादी जीवन दर्शन के अनुरूप हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद की 'मधुमयी प्रतिभा' और 'जागरूक भावुकता' की ओर विशेष रूप से संकेत किया है। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "प्रसादजी का साहित्य सच्चे अर्थ में नवीन जीवन से संबद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं का हल भी उपस्थित करता है। वह साम्प्रतिक जीवन का उन्नायक है।"

(क) हमारा देश

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस सामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊँघते रहते जब—जगकर रजनी भर तारा।

—'चन्द्रगुप्त'

(ख) आँसू

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई

मधु राका मुसक्याती थी
पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कब के
तुम लगे उसी क्षण हमको!

जगती-मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आए!

मन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक-सी।

चंचला स्नान कर आवे
चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक-मधुर थी ऐसी!

जल उठा स्नेह, दीपक-सा
नवनीत हृदय था मेरा
अब शेष धूम-रेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा।

अम्बर असीम अन्तर में
चंचल चपला-से आकर
अब इन्द्रधनुष की आभा
तुम छोड़ गये हो जाकर।

—आँसू

(ग) श्रद्धा का गीत

तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात रे मन!

विकल होकर नित्य चंचल,
खोजती जब नींद के पल,

चेतना थक-सी रही तब;
मैं मलय की वात रे मन!

चिर-विषाद-विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की,

मैं उषा-सी ज्योति-रेखा,
कुसुम-विकसित प्रात रे मन!

जहाँ मरु-ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती;

उन्हीं जीवन-घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन!

पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन, जी रहा झुक,

इस झुलसते विश्व-दिन की,
मैं कुसुम ऋतु-रात रे मन!

चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु सर में;

मधुप-मुखर मरन्द मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन!

—कामायनी

(घ) श्रद्धा का सौन्दर्य

और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम;
कुसुम-वैभव में लता समान,
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

मसृण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म;
ढँक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म।

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।

आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत;
एक लघु ज्वालामुखी अचैत
माधवी रजनी में अश्रांत।

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन-शावक-से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।

और उस मुख पर वह मुसक्यान!
रक्त किसलय पर ले विश्राम;
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम!

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्त्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

उषा की पहिली लेखा कांत,
माधुरी से भीगी भर मोद;
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद।

कुसुम कानन-अंचल में मंद
पवन प्रेरित सौरभ साकार;
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।

और पड़ती हो उस पर शुभ्र
नवल मधु-राका मन की साध;
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिंब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध।

—कामायनी

प्रश्न और अभ्यास

१. 'हमारा देश' कविता की विशेषताएँ बताइए।

२. 'आँसू' कविता के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए—
(अ) आँसुओं को घनीभूत पीड़ा की स्मृति क्यों कहा गया है?
(आ) प्रिय-तन की शोभा के वर्णन में कवि ने कौन-कौन से उपमान प्रयुक्त किए हैं?
(इ) प्रिय के रूप का कवि-हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा?

३. श्रद्धा निराश और व्यथित मानव हृदय को किस प्रकार आश्वासित करती है?

४. कोई भी वस्तु उपयुक्त पृष्ठभूमि में ही सुन्दर लगती है। श्रद्धा के सौन्दर्य को उभारने के लिए कवि ने जिस परिदृश्य की आयोजना की है, उसका वर्णन कीजिए।

५. रीतिकालीन सौन्दर्य वर्णन से श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन किस प्रकार भिन्न है?

६. 'श्रद्धा का सौन्दर्य' कविता में प्रथम दो तथा अन्तिम दो पदों के सौन्दर्य-वर्णन में क्या अन्तर है, कवि ने यह अन्तर क्यों रखा है ?

७. निम्नलिखित अंशों का भाव सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए—

(क) जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

(ख) उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।

(ग) चंचला स्नान कर आवे, चन्द्रिका पर्व में जैसी।

(घ) मैं उषा-सी ज्योति रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन।

(ङ) खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

(च) मदभरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक द्युति की गोद।

: १२ :

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (१८९९—१९६१ ई०) का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल नामक राज्य में हुआ था। उनके पिता पंडित राम सहाय त्रिपाठी गढ़ाकोला के रहने वाले तथा महिषादल राज्य के सामान्य कर्मचारी थे। निराला की प्रारम्भिक शिक्षा बंगला के माध्यम से हुई। नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते बालक सूर्यकुमार (निराला का बचपन का नाम) ने स्कूल को सदा के लिए नमस्कार कर दिया। चौदह वर्ष की आयु में सूर्यकुमार का विवाह मनोहरा देवी के साथ हो गया। तुलसी को महाकवि बनाने में जितना हाथ रत्नावली का था, उतना ही सूर्यकुमार को निराला बनाने में मनोहरा देवी का। निरालो का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं रहा। १९१८ ई० में उनकी पत्नी मनोहरा देवी की मृत्यु हो गई। इसके बाद पिता, चाचा, चचेरे भाई एक-एक करके चल बसे। अपने दो बच्चे और चार भतीजों का भार निराला के कंधों पर आ गया। अंत में पुत्री सरोज की मृत्यु ने निराला का हृदय टूक-टूक कर दिया। निरंतर जीवन और साहित्य के क्षेत्र में संघर्ष करते हुए उन्हें यह कहना पड़ा—

'दुःख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।'

निराला के साहित्यिक जीवन की यात्रा रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित पत्र 'मतवाला' (१९२०) के संपादन से शुरू होती है। इनकी मुक्त छंद की रचनाएँ जो तब तक एकाक्षिक पत्रों से लौट चुकी थीं, प्रथम बार 'मतवाला' में प्रकाशित हुईं। इसके बाद इन्होंने अनेक रचनाएँ—'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नये पत्ते', 'बेला', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' हिन्दी साहित्य को दी हैं। इन्होंने काव्य के अतिरिक्त गद्य-साहित्य से भी हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ाई है।

निराला के काव्य का वह प्रतिमान जो उन्हें 'छायावाद' के अन्य कवियों से निराला बना देता है, उनका छायावादी व्यक्तिगत-विद्रोही रूप है, जिसे जीवन के अतिरिक्त उनकी रचनाओं में भी देखा जा सकता है। यह व्यक्तिगत विद्रोह शोषक वर्ग के प्रति है जबकि उपेक्षित वर्ग के प्रति उन्हें गहरी संवेदना और सहानुभूति है। इस विद्रोह के स्रोत निराला की मानव-करुणा में मिलते हैं, जो दूसरों के दुःख को सदा के लिए दूर करना चाहती है। इसीलिए निराला ने अपनी सहानुभूति तथा संवेदना 'विधवा', 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' की

मजूरिन के प्रति व्यक्त की है। प्रकृति में भी निराला ने परंपरा से हेय समझे जाने वाले 'कुकुरमुत्ता', 'खिजोरा' 'पौधे और कीड़े' आदि पर पूरी कविताएँ लिखी हैं।

इस विद्रोह का दूसरा रूप शोषक वर्ग के प्रति क्षोभ व्यक्त करने में मिलता है। विप्लवी बादल तथा कुकुरमुत्ता इस क्षोभ को व्यक्त करते हैं। शोषकों के विरुद्ध शोषितों के संघर्ष का आवाहन वे 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'झींगुर डटकर बोला', 'महँगू महँगा रहा', आदि कविताओं में करते हैं। इसीलिए इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं तीखे तथा मर्मभेदी व्यंग्य मिलते हैं।

निराला का यह विद्रोही रूप भाव या विषय-वस्तु के अलावा शिल्प के स्तर पर भी व्यक्त हुआ है। इन्होंने परंपरा से चले आए छंदों के बंधनों को तोड़कर मुक्त छंद की घोषणा की। इस प्रकार निराला ने वीरत्व-व्यंजक स्वच्छंदतावादी भाव-बोध को व्यक्त किया है। उन्होंने अपने साहित्य में बंधनों का विरोध किया, सामन्ती रूढ़ियों और साम्राज्यवादी वृत्ति का विरोध किया, कविता में स्वतंत्रता की वाणी दी, छंद के बंधन तोड़ दिए।

निराला की काव्य-भाषा में संधि-समासयुक्त विविध जाति तथा ध्वनि वाले शब्दों की अधिकता है। इसलिए संगीत का स्वर भाषा के प्रवाह को और अधिक गति देता है। निराला शब्दों के आधार पर मूर्ति-निर्माण करते हैं, जिससे इनकी भाषा में चित्रात्मकता का आधिक्य पाया जाता है। भाषा में [illegible] शब्दों का मितव्यय, अर्थ की सघनता आदि उनकी काव्य भाषा की अन्य [illegible] हैं।

निराला आधुनिक हिन्दी के सबसे बड़े क्रांतिकारी और प्रयोगशील कवि हैं।

(क) वसंत-गीत

सखि, वसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया।

लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
बही पवन बन्द मन्द मन्दतर,
जागी नयनों में वन-
यौवन की माया।

आवृत्त सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।

—गीतिका

(ख) बादल राग

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
यह तेरी रण-तरी,
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से

नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर फिर !
बार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार ।
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत-हत अचल-शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा-धीर ।
हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,
हिल-हिल,
खिल-खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक-भवन
सदा पंक पर ही होता जल-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,
रोग-शोक में भी हँसता है
शैशव का सुकुमार शरीर ।
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से, बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं ।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !

चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार !

—परिमल

(ग) ध्वनि

अभी न होगा मेरा अन्त

अभी-अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त ।

हरे-हरे ये पात,
डालियाँ, कलियाँ, कोमल गात ।
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर
फेरूँगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर ।

पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूँगा मैं,
अपने नव जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मैं,

द्वार दिखा दूँगा फिर उनको
हैं मेरे वे जहाँ अनन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त ।
मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,
इसमें कहाँ मृत्यु
है जीवन ही जीवन ।

अभी पड़ा है आगे सारा यौवन;
स्वर्ण-किरण-कल्लोलों पर बहता रे यह बालक-मन;
मेरे ही अविकसित राग से
विकसित होगा बन्धु दिगन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त ।

—परिमल

(७) गहन है यह अंध कारा

गहन है यह अन्ध कारा;
स्वार्थ के अवगुण्ठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा।

खड़ी है दीवार जड़ की घेरकर,
बोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेरकर,
इस गगन में नहीं दिनकर,
नहीं शशधर, नहीं तारा।

कल्पना का ही अपार समुद्र यह,
ललकता है घेरकर तनु, रुद्र यह,
कुछ नहीं आता समझ में,
कहाँ है श्यामल किनारा।

प्रिय, मुझे वह चेतना दो देह की,
याद जिससे रहे वंचित गेह की,
खोजता-फिरता, न पाता हुआ,
क्लेश हृदय हारा।

—अनिमा

(८) फागुन की आभा

घट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।

कहीं साँस लेते हो,
घर-घर भर देते हो,
उड़ने को नभ में तुम
पर-पर कर देते हो,
आँख हटाता हूँ तो
हट नहीं रही है।

पत्तों से लदी डाल
कहीं हरी, कहीं लाल,
कहीं पड़ी है उर में
मन्द-गन्ध-पुष्प-माल,
पाट-पाट शोभा-श्री
पट नहीं रही है।

—अर्चना

प्रश्न और अभ्यास

१. 'वसंत गीत' कविता में वर्णित प्रकृति सौंदर्य को अपने शब्दों में लिखिए।

२. 'बादल राग' कविता में बादल से विप्लव की कामना क्यों की गई है ?

३. हर प्रकार से सुरक्षित, सम्पन्न होते हुए भी शोषक वर्ग विप्लव गर्जन से क्यों भयभीत है ?

४. 'ध्वनि' कविता में जीवन के प्रति कवि ने अपनी अदम्य लालसा किस प्रकार व्यक्त की है ?

५. कवि ने जीवन को अंधकारा क्यों माना है ?

६. निम्नलिखित अंशों का भाव स्पष्ट कीजिए—

(क) आवृत्त सरसी-उर-सरसिज उठे
केशर के केश कली के छुटे
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।

(ख) विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

(ग) पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूँगा मैं,
अपने नव जीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मैं।

: १३ :

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत (१९०० ई०-१९७८) का जन्म अल्मोड़ा जिले के कौसानी गाँव के एक संपन्न परिवार में हुआ। जन्म के छः घंटे बाद ही इनकी माता का देहावसान हो गया। इनकी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़ा में ही हुई। सन् १९१९ में पंतजी प्रयाग आए और म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में भर्ती हुए। असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर, बिना परीक्षा दिए ही, उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया और स्वतंत्र रूप में लग गए।

पंतजी ने सन् १९३८ में 'रुपाभ' पत्रिका निकाली, जिसकी प्रगतिशील साहित्य के विकास और प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। १९५० से ५७ ई० तक वे आकाशवाणी के हिन्दी परामर्शदाता रहे। पंतजी को 'सोवियत भूमि' नेहरू पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। इनकी प्रकाशित महत्त्वपूर्ण कृतियों में, 'वीणा', 'पल्लव', 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा', 'वाणी', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'लोकायतन' तथा 'सत्यकाम' हैं।

पंतजी छायावाद के कवियों में सबसे ज्यादा रोमांटिक तथा व्यक्तिवादी माने जाते हैं। एक तरह से उनका सारा व्यक्तित्व ही गीतमय है। इनकी साहित्यिक यात्रा के तीन उत्थान हैं—प्रथम में वे छायावादी कवि हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से चालित प्रगतिवादी कवि तथा तीसरे में अरविंद दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी कवि। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"तीनों ही अवस्था में पंत वैयक्तिकतावादी हैं। जिन दिनों समाजवादी सिद्धांतों से वे आकृष्ट हुए थे, उन दिनों भी वे अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से सबसे अलग समझते थे। उनकी उन कविताओं में बराबर 'रे' का प्रयोग है जो कवि और उसकी कविता के श्रोतृवर्ग के बहुत बड़े व्यवधान का सूचक है। परंतु उनमें अपने भावों के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति नहीं है जबकि ऐसे कवि साधारणतः आसक्तियुक्त हुआ करते हैं। पंत सौंदर्य की महिमा के अनासक्त साक्षी कवि हैं। छायावाद का महान आंदोलन पंत के समान नेता पाकर तेजी से लोकप्रिय हो गया।"

छायावाद के कवियों में पंत सबसे ज्यादा प्रकृति-प्रेमी हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपों को पंत जी ने बचपन में देखा था। इन्होंने प्रकृति के सौंदर्य को इतना महत्त्व दिया कि बादल पर पूरी कविता ही लिख दी। प्रकृति इनके लिए प्रेयसी, माँ,

सहचरी, सखी सभी रूपों में आई है। देश-प्रेम की भावना भी प्रकृति प्रेम से ही उत्पन्न हुई तथा उसे प्राकृतिक बिंबों के माध्यम से ही व्यक्त किया गया।

छायावाद की काव्य-भाषा के निर्माण और विकास में पंत और उनके पल्लव की भूमिका का महत्त्वपूर्ण योग है। पंत के शब्द अपेक्षाकृत छोटे, असंयुक्त वर्णवाले, हल्के तथा वायवी हैं। इसके अतिरिक्त भाषा को कोमल बनाने के लिए पंतजी ने 'है', 'था' आदि सहायक क्रियाओं का बहिष्कार किया। पंतजी निपुण शब्दशिल्पी हैं।

कुल मिलाकर पंतजी आधुनिक हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवियों में स्थान रखते हैं।

(क) पर्वत पर पावस

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं, आँखों में, फैल !
अवनि औ' अम्बर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल !
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मेमनों-से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर !
द्विरद दंतों-से उठ सुन्दर
सुखद कर सीकर-से बढ़कर,
भूति-से शोभित बिखर बिखर,
फैल फिर कटि के-से परिकर,
बदल यों विविध वेश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर !

इन्द्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते विशिखों की धार;,
मरुत जब उनको द्रुत चुपकार,
रोक देता था मेघा सार !
अचल के जब वे विमल विचार
अवनि से उठ उठ कर ऊपर,
विपुल व्यापकता में अविकार
लीन हो जाते थे सत्वर,
विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अम्बर

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों का भारी झर झर;
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गंभीर घहर;
बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल-पावस के प्रश्नोत्तर!

खैंच ऐंचीला भ्रू सुरचाप—
शैल को सुधि यों बारंबार—
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार;
जलद पट से दिखला मुख चन्द्र,
पलक पलपल चपला के मार;
भग्न उर पर भूधर-सा हाय!
सुमुखि! धर देती है साकार!

—पल्लव

(ख) संध्या के बाद

सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरों पर,
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर!
ज्योति स्तंभ सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल,
वृहद् जिह्म विश्लथ केंचुल-सा
लगता चितकबरा गंगाजल!

धूपछाँह के रंग की रेती
अनिल ऊर्मियों से सर्पांकित,
नील लहरियों में लोड़ित
पीला जल रजत जलद से बिम्बित !

सिकता, सलिल, समीर सदा से
स्नेह-पाश में बँधे समुज्ज्वल,
अनिल पिघल कर सलिल,
सलिल ज्यों गति द्रव खो बन गया लवोपल !

शंख घंट बजते मंदिर में
लहरों में होता लय-कंपन,
दीप-शिखा सा ज्वलित कलश
नभ में उठकर करता नीराजन !

तट पर बगुलों-सी वृद्धाएँ
विधवाएँ जप-ध्यान में मगन,
मंथर धारा में बहता
जिनका अदृश्य गति अंतर-रोदन !

दूर, तमस रेखाओं-सी,
उड़ते पंखों की गति-सी चित्रित,
सोन खगों की पाँति
आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित !

स्वर्ण चूर्ण-सी उड़ती गोरज
किरणों की बादल-सी जग कर,
सनन् तीर-सा जाता नभ में
ज्योतित पंखों कंठों का स्वर !

लौटे खग, गाएँ घर लौटीं,
लौटे कृषक श्रांत श्लथ डग धर,
छिपे गृहों में म्लान चराचर,
छाया भी हो गई अगोचर।

लौटे पैंठ से व्यापारी भी
जाते घर, उस पार नाव पर,
ऊँटों, घोड़ों के सँग बैठे
खाली बोरों पर, हुक्का भर !

जाड़ों की सूनी द्वाभा में
झूल रही निशि छाया गहरी,
डूब रहे निष्प्रभ विषाद में
खेत, बाग, गृह, तरु, तट लहरी !

बिरहा गाते गाड़ी वाले,
भूँक-भूँक कर लड़ते कूकर,
हुआ-हुआ करते सियार
देते विषण्ण निशि बेला को स्वर !

माली की मँड़ई से उठ,
नभ के नीचे नभ-सी धूमाली,
मंद पवन में तिरती
नीली रेशम की-सी हलकी जाली !

बत्ती जला दुकानों में
बैठे सब कस्बे के व्यापारी,
मौन मन्द आभा में
हिम की ऊँघ रही लंबी अँधियारी !

धुँआ अधिक देती है
टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
मन से कढ़ अवसाद श्रांति
आँखों के आगे बुनती जाला !

छोटी सी बस्ती के भीतर
लेन देन के थोथे सपने,
दीपक के मंडल में मिलकर
मँडराते घिर सुख दुख अपने !

काँप काँप उठते लौ के संग
कातर उर क्रन्दन, मूक निराशा,
क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यों
गोपन मन को दे दी हो भाषा !

जीन हो गई क्षण में बस्ती,
मिट्टी खपरे के घर आँगन,

भूल गए लाला अपनी सुधि,
भूल गया सब ब्याज, मूलधन!
अकुशली-सी परचून किराने की ढेरीं
लग रहीं तुच्छतर,
इस नीरव प्रदोष में आकुल
उमड़ रहा अन्तर जग बाहर!
अनुभव करता लाला का मन,
छोटी हस्ती का सस्तापन,
जाग उठा उसमें मानव,
औ' असफल जीवन का उत्पीड़न!
दैन्य दुःख अपमान ग्लानि
चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
बिना आय की क्लांति बन रही
उसके जीवन की परिभाषा!
जन अनाज के ढेर सदृश ही
वह दिन भर बैठा गद्दी पर,
बात बात पर झूठ बोलता
कौड़ी की स्पर्धा में मर मर।
फिर भी क्या कुटुम्ब पलता है?
रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन?
बना पा रहा वह पक्का घर?
मन में सुख है? जुटता है धन?
खिसक गई आंखों से कथड़ी
ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया
घोर विवशता का निज कारण!
शहरी बनियों सा वह भी उठ
क्यों बन जाता नहीं महाजन?
रोक दिए हैं किसने उसकी
जीवन उन्नति के सब साधन?

यह क्या संभव नहीं
व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन ?
कर्म और गुण के समान हो
सकल आय-व्यय का हो वितरण ?

घुसे घरौंदों में मिट्टी के
अपनी अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नहीं,
फूँक दे जो सबमें सामूहिक जीवन ?

मिलकर जन निर्माण करें जग,
मिलकर भोग करें जीवन का,
जन विमुक्त हो जन शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का ?

दरिद्रता पापों की जननी,
मिटें जनों के पाप, ताप, भय,
सुन्दर हों अधिवास, वसन, तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय ?

व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुःख क्लेश की,
जन का श्रम जन में बँट जाए,
प्रजा सुखी हो देश देश की !

टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आई जब बुढ़िया बेचारी,
आध पाव आटा लेने,—
लो, लाला ने फिर डंडी मारी !

चौंक उठा घुग्घू डालों में
लोगों ने पट दिए द्वार पर,
निगल रही बस्ती को धीरे,
गाढ़ अलस निद्रा का अजगर !

—शान्त

प्रश्न और अभ्यास

१. बादल किस प्रकार पर्वत को हाथी का रूप प्रदान करते हैं ?

२. पर्वत और पादप के प्रश्नोत्तरों के सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए।

३. 'पर्वत पर पावस' कविता के आधार पर प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण कीजिए।

४. 'संध्या के बाद' कविता में चित्रित संपदा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

५. इस कविता में कवि ने विधवाओं के अन्तररोदन को अदृश्य क्यों कहा है ?

६. गाँव का साहूकार अपने जीवन से असंतुष्ट क्यों है ?

७. सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए कविता में क्या विचार व्यक्त किए गए हैं ?

८. देश में समाजवाद लाने में हमारी कथनी और करनी का अन्तर किस प्रकार बाधक होता है ?

९. भाव स्पष्ट कीजिए—

(क) अवनि जो अंबर के वे खेल
मेल में जलद, जलद में शैल!

(ख) विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अंबर!

(ग) दीप-शिखा-सा ज्वलित कनक
नभ में करता नीराजन!

(घ) दरिद्रता पापों की जननी
मिटें जनों के पाप, ताप, भय,
सुन्दर हों अधिवास, वसन, तन
पशु पर फिर मानव की हो जय!

: १४ :

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (१९०७ ई०—) का जन्म फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एक स्कूल में प्राध्यापक थे, माता हेमरानी देवी धर्मपरायणा महिला थीं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई। बारह वर्ष की आयु में इनका विवाह डा० स्वरूप नारायण वर्मा से हुआ। विवाह के साथ ही महादेवी का अध्ययन स्थगित हो गया। प्राचीनतावादी पारिवारिक वातावरण के बावजूद इन्होंने अपनी शिक्षा पुनः प्रारम्भ की और प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० किया। एम० ए० के बाद इनकी नियुक्ति प्रयाग महिला विद्यापीठ में हो गई, जहाँ बाद में ये प्राचार्या हो गईं। महादेवी की रुचि साहित्य के प्रति जैशव से ही थी; दर्शन, संगीत तथा चित्रकला से भी इन्हें विशेष अनुराग है।

महादेवी ने मुख्यतः गीतों की रचना की है, जिनमें वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी पर दुःखवादी-जीवन का प्रभाव है। दुःख इनके जीवन-पथ पर मिली हुई एक क्षणिक अनुभूति मात्र नहीं वरन् उनकी संपूर्ण साहित्य-साधना का मूलाधार है। इन्होंने केवल दुःख की ही अभिव्यक्ति नहीं की है। वेदना के प्रति विशेष अनुराग होने के बावजूद उनके काव्य में यत्र-तत्र जीवन के उल्लासपूर्ण और भावक पक्षों की भी स्वीकृति है। यदि एक ओर उन्होंने आत्म-परिचय प्राप्त करते हुए अपनी तुलना 'नीर भरी दुःख की बदली' से की, तो दूसरी ओर 'रात के उर में दिवस की चाह का शर' भी माना है।

छायावादी कवियों में सबसे ज्यादा रहस्यात्मक भावना महादेवी की कविताओं में मिलती है। इनके गीतों का मूल स्वर असीम, अलोकर और परोक्ष प्रिय के प्रति प्रणय-निवेदन है। महादेवी अपने अरूप प्रियतम का साक्षात्कार अन्तःकरण में ही करती हैं और अपने शरीर के स्वाभाविक कार्य-व्यापारों द्वारा उनकी पूजा का विधान करती हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवीजी को हुई और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"

महादेवी के काव्य में प्रकृति के सीमित उपादान ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे संध्या, निशीथ, चाँदनी, उषा, पावस, बादल आदि। इनका भी प्रयोग इन्होंने प्रतीक रूप में किया है। इन्हें दीपक का प्रतीक अत्यंत प्रिय है। दीपक इनके यहाँ संपूर्ण जीवन का पर्याय बनकर उपस्थित हुआ है।

इनकी काव्य-भाषा में रुपए की-सी झनक और चमक है, भाषा में तत्समता का वैभव है, साथ ही लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार भी। पूरी कविता में संगीत का स्वर बराबर सुनाई देता है।

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' इनकी प्रसिद्ध काव्य-रचनाएँ हैं। इनके अलावा महादेवी ने कई आत्मीय संस्मरण, सहज रेखा-चित्र और विचारोत्तेजक निबंध भी लिखे हैं।

(क) मैं नीरभरी दुख की बदली !

मैं नीरभरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग-पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,

नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली।

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर हो निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

—सांध्य गीत

(ख) पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन,
और होंगे नयन सूखे
तिल बुझे औ' पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला !

अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दुखी व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति-
से तिमिर में स्वर्ण बेला !

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी;
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला !

हास का मधु-दूत भेजा,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो !
ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना-जल; स्वप्न-शतदल,
जल लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला !
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

—दीपशिखा

(ग) सब आँखों के आँसू उजले

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला !

जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरंद भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा!
दोनों संगी, पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

वह अचल धरा को भेंट रहा
शत-शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्मिल करुणा-जल
कब सागर उर पाषाण हुआ, कब गिरि ने निर्मम तन बदला ?

नभ तारक-सा खंडित पुलकित
यह क्षुर-धारा को चूम रहा,
वह अंगारों का मधु-रस पी
केशर-किरणों-सा झूम रहा,
अलमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला ?

नीलम मरकत के सम्पुट दो
जिनमें बनता जीवन-मोती,
इसमें ढलते सब रंग-रूप
उसकी आभा स्पन्दन होती !
जो नभ में विद्युत-मेघ बना रज में अंकुर निकला !

संसृति के प्रति पग में मेरी
साँसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने-मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो !
जलते खिलते बढ़ते जग में घुलमिल एकाकी प्राण चला !
सपने-सपने में सत्य ढला !

—दीपशिखा

प्रश्न और अभ्यास

१. 'कवयित्री ने 'नीर भरी दुख की बदली' के रूप में अपना परिचय दिया है'—इस कथन पर टिप्पणी लिखिए।

२. 'पंथ होने दो अपरिचित' कविता में कवयित्री ने मिलन में एकाकीपन और विरह में दुकेलापन किस प्रकार अनुभव किया है ?

३. विषम परिस्थितियों में भी कवयित्री किस प्रकार अपने पथ पर अडिग रहना चाहती हैं ?

४. निम्नलिखित अंशों का भाव-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए—
(क) विस्तृत नभ का ..... मिट आज चली।
(ख) वह अचल धरा ..... तन बदला।

———

: १५ :

रामधारीसिंह दिनकर

रामधारीसिंह दिनकर (१९०८-१९७४ ई०) का जन्म मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में एक साधारण किसान परिवार में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय पाठशाला में ही हुई। पटना कालेज से बी० ए० आनर्स किया। वे बरबीघा स्कूल में कुछ दिन अध्यापक भी रहे। १९४७-१९५० तक इन्होंने जनसंपर्क विभाग में निदेशक के पद पर काम किया। फिर लंगटसिंह कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने। १९५२ में वे राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। १९६४ में इनकी नियुक्ति भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर हुई, जहाँ से १९६५ में त्यागपत्र दे दिया और उन्होंने केन्द्रीय सरकार के हिन्दी सलाहकार का पद सँभाला।

दिनकर को भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक उनकी पुस्तक पर 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार और 'उर्वशी' पर 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' मिला। उन्होंने देश-विदेश में पर्याप्त भ्रमण किया है।

दिनकर की प्रमुख काव्य-कृतियाँ—'रेणुका', 'हुंकार', 'रश्मिरथी', 'रसवंती', 'नील कुसुम', 'कुरुक्षेत्र', 'उर्वशी' आदि हैं। इनके अतिरिक्त 'क्षुद्र-कविता की खोज', 'साहित्योन्मुखी', 'दिनकर की डायरी' आदि उनकी प्रमुख गद्य-कृतियाँ हैं।

दिनकर की कविता में एक ओर ओजस्वी वीर रस प्रधान कृतियाँ हैं, दूसरी तरफ सौंदर्य और शृंगार-रस प्रधान। एक ओर उनके मन में छायावादी रूमानी भावुकता के संस्कार हैं, दूसरी तरफ सामाजिक मंगल कामना की भावना है। एक तरह से वे छायावादियों और प्रगतिवादियों के बीच की कड़ी हैं। दोनों ही रूपों में उमंग और मस्ती प्रकट होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"'हुंकार' में कवि सामाजिक विषमताओं से बुरी तरह आहत है। वह अपनी कल्पनाओं को बार-बार पुकार कर कहता है कि यह दुनिया रहने लायक नहीं है, किसी और मोहक लोक में ले चलो, पर उनकी कल्पना चील की तरह मंडराकर बारंबार इस विसदृशता-व्याकुल जगत की ओर ही झपट्टा मारती है। 'रसवंती' में कवि इस विषय में कम मुखर है, वह सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होता है, परंतु उसके चित्त में शांति नहीं है। उसका मन व्यक्त रूप में

मस्ती और मौज का उपासक है, शहर की चिंता में दुबले होने वालों से अलग रहना पसंद करता है।"

दिनकर मैथिलीशरण गुप्त की परंपरा में ही राष्ट्रकवि के गौरव के अधिकारी माने गए हैं।

(क) कस्मै देवाय ?

रच फूलों के गीत मनोहर, चित्रित कर लहरों के कंपन,
कविते ! तेरी विभव-पुरी में स्वर्गिक स्वप्न बना कवि-जीवन।
छाया सत्य चित्र बन उतरी, मिला शून्य को रूप सनातन,
कवि-मानस का स्वप्न भूमि पर बन आया सुरतरु-मधु-कानन।

भावुक मन था, रोक न पाया, सज आए पलकों में सावन,
नालंदा-वैशाली के ढूहों पर बरसे पुतली के घन।
दिल्ली की गौरव-समाधि पर आँखों ने आँसू बरसाए,
सिकता में सोए अतीत के ज्योति-वीर स्मृति में उग आए।

बार-बार रोती रावी की लहरों से निज कंठ मिलाकर,
देवि ! तुझे, सच रुला चुका हूँ सूने में आँसू बरसाकर।
मिथिला में पाया न कहीं, तब ढूँढ़ा बोधि-वृक्ष के नीचे,
गौतम का पाया न पता, गंगा की लहरों ने दृग मीचे।

मैं निज प्रियदर्शन अतीत का खोज रहा सब ओर नमूना,
सच है या मेरे दृग का भ्रम ? लगता विश्व मुझे यह सूना।
छीन-छीन जल-थल की थाती संस्कृति ने निज रूप सजाया,
विस्मय है, तो भी न शांति का दर्शन एक पलक को पाया।

जीवन का यति-साम्य नहीं क्यों फूट सका अब तक तारों से ?
तृप्ति न क्यों जगती में आई अब तक भी आविष्कारों से ?
जो मंगल-उपकरण कहाते, वे अनुजों के पाप हुए क्यों ?
विस्मय है, विज्ञान बिचारे के वर ही अभिशाप हुए क्यों ?

धरणी चीख-कराह रही है दुर्वह शस्त्रों के भारों से,
सभ्य जगत को तृप्ति नहीं अब भी युगव्यापी संहारों से।
गूँज रही संस्कृति-मंडप में भीषण फणियों की फुंकारें,
गढ़ते ही भाई जाते हैं भाई के वध-हित तलवारें।

शुभ्र वसन वाणिज्य-न्याय का आज रुधिर से लाल हुआ है,
किरिच-नोक पर अवलंबित व्यापार, [illegible]त बेहाल हुआ है।
सिर धुन-धुन सभ्यता-सुन्दरी रोती है बेबस निज रथ में,
"हाय ! दनुज किस ओर मुझे ले खींच रहे शोणित के पथ में ?"

दिशि-दिशि शस्त्रों की कराल ध्वनि, धन-पिशाच का भैरव-नर्त्तन,
दिशा-दिशा में कलुष-नीति, हत्या, तृष्णा, पातक-आवर्त्तन।
दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन,
आह ! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित-शोषण।

क्रांति-धात्रि कविते ! जागे, उठ, आडंबर में आग लगा दे,
पतन, पाप, पाखण्ड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।
विद्युत की इस चकाचौंध में देख, दीप की लौ रोती है।
अरी, हृदय को थाम, महल के लिए झोपड़ी बलि होती है।

देख, कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें,
बनती ही उनपर जाती हैं वैभव की ऊँची दीवारें।
धन-पिशाच के कृषक-मेघ में नाच रही पशुता मतवाली,
अतिथि मग्न पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली।

उठ भूषण की भाव-रंगिणी ! लेनिन के दिल की चिनगारी !
युग-मर्दित यौवन की ज्वाला ! जाग-जाग, री क्रांति-कुमारी !
लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग, आदिकवि की कल्याणी !
फूट-फूट तू कवि-कंठों से बन व्यापक निज युग की वाणी !

बरस ज्योति बन गहन तिमिर में, फूट मूक की बनकर भाषा,
चमक अंध की प्रखर दृष्टि बन, उमड़ गरीबी की जन आशा।
गूँज शांति की सुखद साँस-सी कलुष-पूर्ण युग-कोलाहल में,
बरस, सुधामय कनक-वृष्टि-सी ताप-तप्त जग के मरुथल में।

खींच मधुर स्वर्गीय गीत से जगती को जड़ता से ऊपर,
सुख की सरस कल्पना-सी तू छा जाए कण-कण में भू पर।
क्या होगा, अनुचर न वाष्प हो, पड़े न विद्युत-दीप जलाना,
मैं न अहित मानूँगा, चाहे मुझे न नभ के पंथ चलाना।

तमसा के अति भव्य पुलिन पर, चित्रकूट के छाया-तरु तर,
कहीं तपोवन के कुंजों में देना पर्णकुटी का ही घर।
जहाँ तृणों में तू हँसती हो, बहती हो सरि में इठलाकर,
पर्व मनाती हो तरु-तरु पर, तू विहंग-स्वर में गा-गाकर।

कंद, मूल, नीवार भोगकर, सुलभ इंगुदी-तैल जलाकर,
जन-समाज संतुष्ट रहे हिल-मिल आपस में प्रेम बढ़ाकर।

धर्म-भिन्नता हो न, सभी जन शैल-तटी में हिल-मिल जाएँ,
ऊषा के स्वर्णिम प्रकाश में भावुक भक्ति-मुग्ध-मन गाएँ।

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्,
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् कस्मै देवाय हविषा विधेम ?'

—रेणुका

(ख) चाँद और कवि

रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है !
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।

जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते,
और लाखों बार तुझ-से पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते।

आदमी का स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का,
आज बनता और कल फिर फूट जाता है,
किन्तु, तो भी धन्य, ठहरा आदमी ही तो !
बुलबुलों से खेलता, कविता बनाता है !

मैं न बोला, किन्तु, मेरी रागिनी बोली,
चाँद ! फिर से देख, मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं ? है यही पानी ?
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू ?

मैं न वह, जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ,
और उसपर नींव रखती हूँ नए घर की,
इस तरह, दीवार फौलादी उठाती हूँ।

मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने, जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है :
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
'रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं ये,
रोकिए, जैसे बने, इन स्वप्नवालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं ये।'

—नीलकुसुम

(ग) जनतंत्र का जन्म

(२६ जनवरी, १९५० ई०)

सदियों की ठंढी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें वही,
जाड़े-पाले की कसक सदा सहने वाली,
जब अंग-अंग में लगे साँप हों चूस रहे,
तब भी न कभी मुँह खोल दर्द कहनेवाली।

जनता ? हाँ, लंबी-बड़ी जीभ की वही कसम,
'जनता, सचमुच ही, बड़ी वेदना सहती है।'
'सो ठीक, मगर, आखिर, इसपर जनमत क्या है ?'
है प्रश्न गूढ़, जनता इसपर क्या कहती है ?'

मानो, जनता हो फूल जिसे एहसास नहीं,
जब चाहो, तभी उतार सजा लो दोनों में,
अथवा कोई दुधमुँही जिसे बहलाने के,
जंतर-मंतर सीमित हों चार खिलौनों में।

लेकिन, होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ ?
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है।

अब्दों, शताब्दियों सहस्राब्द का अंधकार,
बीता, गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं,
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय,
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते आते हैं।

सबसे विराट जनतंत्र जगत् का आ पहुँचा,
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तैयार करो,
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

आरती लिए तू किसे ढूँढ़ता है मूरख,
मंदिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में ?
देवता कहीं सड़कों पर मिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।

फावड़े और हल राजदंड बनने को हैं,
धूसरता सोने से शृंगार सजाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

—नीलकुसुम

प्रश्न और अभ्यास

१. 'कस्मै देवाय'—कविता के आधार पर कवि की पीड़ा के कारणों पर प्रकाश डालिए।

२. इस कविता में विज्ञान की प्रगति मानव के लिए अभिशाप क्यों मानी गई है?

३. कवि ने कविता को क्रांति-धात्रि क्यों माना है और वह उससे क्या आकांक्षा करता है?

४. कवि किस प्रकार के जीवन की कामना करता है?

५. 'चाँद और कवि' कविता में स्वप्न-द्रष्टा मानव ने प्रकृति को किस प्रकार चुनौती दी है?

६. 'जनतंत्र का जन्म' कविता में कवि ने जनता के शक्ति-स्वरूप की किस रूप में स्थापना की है?

७. कवि के अनुसार देश में सच्चे जनतंत्र का आगमन कब और कैसे माना जाएगा?

८. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए—

(क) छीन-छीन जल-थल की थाती संस्कृति ने निज रूप सजाया,
विस्मय है, तो भी न शांति का दर्शन एक पलक को पाया।

(ख) घन-पिशाच के कृषक-मेघ में नाच रही पशुता मतवाली।

(ग) मैं न वह, जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ।

(घ) दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

(ङ) फावड़े और हल राजदंड बनने को हैं,
धूसरता सोने के शृंगार सजाती है।

———

: १६ :

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अज्ञेय (१९११ ई०) का जन्म कसया (जिला देवरिया) में पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ। बचपन लखनऊ, श्रीनगर और जम्मू में बीता। मूलतः ये विज्ञान के विद्यार्थी थे, किन्तु साहित्य में रुचि होने के कारण एम० ए० (अंग्रेजी) में शामिल हुए तथा एक साल बाद ही पढ़ाई छोड़ दी और क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़कर जेल गए। अज्ञेय ने अपने जीवन में अनेक नौकरियाँ कीं और छोड़ दीं। अनेक यात्राएँ कीं देश में भी और विदेश में भी। 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'दिनमान' का कुछ दिनों तक संपादन किया। आजकल नव भारत टाइम्स (दैनिक) और 'नया प्रतीक' (मासिक) का संपादन कर रहे हैं। उनकी मुख्य काव्य कृतियाँ हैं—'भग्नदूत', 'हरीघास पर क्षण भर', 'बावरा-अहेरी', 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार,' 'सागर मुद्रा' आदि। इसके अलावा कई कहानी-संग्रह, उपन्यास, यात्रा-साहित्य और आलोचनाएँ भी लिखी हैं। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' (१९४३ ई०) 'दूसरा सप्तक' (१९५२) और 'तीसरा सप्तक' (१९५९) का भी संपादन किया।

हिन्दी अज्ञेय की मातृभाषा नहीं है, हिन्दी उन्होंने सीखी है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत और अंग्रेजी में हुई। इसलिए वात्स्यायन संस्कृतनिष्ठ परंपरा में पले अंग्रेजी संस्कारों के व्यक्ति हैं।

अज्ञेय अभिजातवर्गीय कवि हैं। अभिजातवर्गीय साहित्यकारों में एक सहज आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना होती है, जो उनके लेखन को एक शालीनता देती है। अज्ञेय की काव्य-वस्तु ही नहीं, बल्कि उनके काव्य-शिल्प में भी सुरुचि और शालीनता प्रकट होती है। अज्ञेय का काव्य और उनका व्यक्तित्व बहुत ही व्यवस्थित है।

अज्ञेय की कविता में अकेलेपन का वैभव है। कविता के केन्द्र में कवि का 'अहं' है। वे मूलतः रोमांटिक कवि हैं। उनका विद्रोह भी रोमांटिक व्यक्तिवादी व्यक्तित्व का विद्रोह है। इसीलिए अज्ञेय मूलतः प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। आज भी उनकी श्रेष्ठ कविताएँ प्रेम-कविताएँ ही हैं।

अज्ञेय हिन्दी में 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनकी रुचि प्रगीत कविता की ओर ही रही है। अज्ञेय शब्द-शिल्पी हैं—निर्वैयक्तिकता की हद तक सजग। उन्होंने शब्दों को माँजकर सटीक अर्थ भरने का सफल प्रयास किया है।

(क) नदी के द्वीप

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाए।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत-कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।

माँ है वह! है, इसी से हम बने हैं।
किन्तु हम हैं द्वीप। हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जाएँगे।

और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते?
रेत बनकर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनाएँगे।

द्वीप हैं हम! यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी की क्रोड में।
वह बृहत् भूखंड से हम को मिलाती है।
और वह भूखंड अपना पितर है।
नदी तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो। यदि ऐसा कभी हो—

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के,
किसी स्वैराचार से, अतिचार से,
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल,
प्रवाहिनी बन जाए—
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर।
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।

कहीं फिर भी खड़ा होगा नए व्यक्तित्व का आकार।
मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

—बावरा अहेरी

(ख) चांदनी जी लो

शरद चांदनी
बरसी
अँजुरी भर कर पी लो
ऊँघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।
सींच रही है ओस
हमारे गाने,
घने कुहासे में
झिपते
चेहरे पहचाने
खंभों पर बत्तियाँ
खड़ी हैं सीठी
ठिठक गए हैं मानो
पल-छिन
आने-जाने।

उठी ललक
हिय उमँगा
अनकहनी
अलसानी
जगी लालसा
मीठी,

खड़े रहो ढिग
गहो हाथ
पाहुन-मन-भाने,
ओ प्रिय रहो साथ
भर-भरकर अँजुरी
पी लो
बरसी
शरद चाँदनी
मेरा

अंतः स्पंदन
तुम भी क्षण-क्षण जी लो !

—हरी घास पर क्षण भर

(ग) हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान

यह ऊपर आकाश नहीं, है
रूपहीन आलोक मात्र। हम अचल-पंख
तिरते जाते हैं
भार-मुक्त।
नीचे यह ताजी धुनी रुई की उजली
बादल-सेज बिछी है
स्वप्न-मसृण :
या यहाँ हमीं अपना सपना है ?

लेकिन उतरो :
इस झोनी चादर में है जो घुटन, भेद कर आओ।
दीखीं क्या वे दूर लकीरें
धुँधली छायाएँ—कुछ काली, कुछ चमकीली,
मुग्धकारी कुछ, कुछ लहरीली ?
होती मूर्त महानगरी है
संसृति के अवतंस मनुज की कृति वह
अविश्राम उद्यम की कीर्ति-पताका !

उतरो घोड़ा और
बनी कुछ हो जाने दो
रासायनिक धुंध के इस चीकट कंबल की नई घुटन को :
मानव का समूह-जीवन इस झिल्ली में ही पनप रहा है !

उतरो
घोड़ा और :
धरा पर।
हाँ, वह देखा ?
लगते ही आघात ठोस धरती का
धमनी में भारी हो आया मानव-रक्त और कानों में
गूँजा सन्नाटा संसृति का !

उतरो घोड़ा और :
साँस ले गहरी !
अपने उड़न-खटोले की खिड़की को खोलो
और पैर रखो मिट्टी पर :
खड़ा मिलेगा
वहाँ सामने तुमको
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिसकी अनझिप आँखों में नारायण की व्यथा भरी है !

—इंद्रधनु रौंदे हुए ये

प्रश्न और अभ्यास

१. नदी के द्वीप कविता में द्वीप, नदी और भूखंड के प्रतीक स्पष्ट कीजिए।

२. कोष, नाँदवाँ, बंजरीप, उभार का अर्थ मनुष्य के संदर्भ में बताइए।

३. नदी की भाँति द्वीप नहीं बहना चाहता, क्यों ?

४. नदी की प्रखर धारा में द्वीप नष्ट होने से क्यों नहीं घबराता ? वह किस आधार पर आशावान है ?

५. 'चाँदनी जी लो' कविता के आधार पर चाँदनी रात का चित्र अपने शब्दों में लिखिए।

६. उद्दीपन रूप में इस कविता का संदर्भ समझाइए।

७. 'हवाई यात्रा' कविता के आधार पर हवाई यात्री की सामान्य अनुभूतियों का उल्लेख कीजिए।

८. कवि ने सामान्य मनुष्य की आँखों में नारायण की व्यथा भरी हुई क्यों बताई है? क्या समाज के उच्च एवं निम्न वर्ग का अंतर लक्ष्य करना कवि का अभीष्ट है?

९. निम्नांकित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :—

(क) यह स्रोतस्विनी ही·····स्वीकार है वह भी।

(ख) शरद चाँदनी बरसी अँजुरी भर कर पी लो।

(ग) हम अचल-पंख तिरते जाते हैं भार-मुक्त।

(घ) ससृति के अवतंस····· ···कीर्ति पताका।

(ङ) अनपेक्षित प्रतिरूप··· ·····व्यथा भरी है।

: १७ :

नागार्जुन

श्री नागार्जुन (१९११ ई०) का जन्म बिहार के सतलखा (ननिहाल) नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता तरौनी गाँव में रहते थे। नागार्जुन का बचपन का नाम वैद्यनाथ मिश्र था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय संस्कृत पाठशाला में हुई। नागार्जुन सन् १९३६ में श्रीलंका गए और उन्होंने वहाँ पर बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली। वहाँ से १९३८ में वापस स्वदेश लौट आए।

घुमक्कड़ी और फक्कड़पन नागार्जुन के व्यक्तित्व की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन्होंने संपूर्ण भारत का भ्रमण किया है—एक बार नहीं, कई बार। फलतः इन्हें एक जगह टिक कर काम करने का अवसर नहीं मिला।

इन्होंने मैथिली और हिन्दी दोनों में अपनी रचनाएँ लिखीं। १९३५ में 'दीपक' (हिन्दी मासिक) और १९४२-४३ में विश्वबंधु (साप्ताहिक) का संपादन किया। नागार्जुन को अपने राजनीतिक कार्यकलापों के कारण कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी।

उनकी मुख्य काव्य-कृतियाँ हैं—युगधारा, प्यासी पथराई आँखें, सतरंगे पंखों वाली और भस्मांकुर (खंड काव्य)। इसके अलावा कई कविताएँ पुरानी फाइलों में दबी पड़ी हैं और कुछ अप्रकाशित हैं। नागार्जुन ने कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें बलचनमा, रतिनाथ की चाची, नई पौध, कुम्भीपाक, उग्रतारा आदि प्रमुख हैं।

सहजता नागार्जुन के काव्य की विशेषता है। जटिल से जटिल भाव भी नागार्जुन की लेखनी से निकलकर सहज प्रभाव डालने में सफल हो जाते हैं। स्वाधीन भारत में कसमसाती भारतीय जनता—विशेषतः किसान जीवन की पीड़ाओं को नागार्जुन ने अपनी कविता की विषय-वस्तु बनाया है। उनकी काव्य-भाषा में भी एक किसान की-सी साफगोई और निर्मम खरापन है। यह साफगोई जब व्यंग्य के साथ आती है तब अपूर्व काव्य की सृष्टि होती है। डा० राम विलास शर्मा ने इनके बारे में ठीक ही लिखा है "भारतेन्दु और बालमुकुंद गुप्त ने हमारे साहित्य में जो व्यंग्य और जिंदादिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि हैं।" इसका एक कारण उनका जनता से जीवंत संपर्क है। उन्होंने कई आंदोलनधर्मी कविताएँ भी लिखी हैं—ठीक अर्थ में 'पोस्टर कविता'। अब तक हिन्दी में सफल पोस्टर कविताएँ नागार्जुन ने ही लिखी हैं।

(क) बादल को घिरते देखा है

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णिम शिखर थे
एक दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशा काल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में
शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठनेवाले
निज के ही उन्मादक परिमल—
के पीछे धावित हो-होकर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परंतु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारु कानन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघढ़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी में,

रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपदी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

—युगधारा

(ख) बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
बहुत दिनों के बाद।
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे-टटके फूल
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भूपर
बहुत दिनों के बाद।

—युगधारा

(ग) अकाल और उसके बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाईं पांखें कई दिनों के बाद।

— सतरंगे पंखोंवाली

प्रश्न और अभ्यास

१. 'बादल को घिरते देखा है' कविता के आधार पर वर्षा ऋतु के विभिन्न दृश्यों का चित्रण कीजिए।

२. किन्नर-किन्नरियों की वेशभूषा और साज-सज्जा का चित्रण अपने शब्दों में कीजिए।

३. इस कविता की शैली ने भावाभिव्यक्ति में किस प्रकार अभिवृद्धि की है ?

४. 'बहुत दिनों के बाद' कविता में 'बहुत दिनों के बाद' पंक्ति की आवृत्ति की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

५. 'अकाल और उसके बाद' कविता में अकाल की भयावहता का चित्रण अपने शब्दों में कीजिए।

६. भाव स्पष्ट कीजिए—

(क) तिक्त-मधुर बिसतंतु खोजते हंसों को तिरते देखा है।

(ख) तरल तरुण कस्तूरी मृग को अपने पर चिढ़ते देखा है।

(ग) कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास।

———

: १८ :

गजानन माधव मुक्तिबोध

नई कविता को व्यवस्थित मूल्य प्रदान करनेवाले कवि मुक्तिबोध (१९१७-१९६४ ई०) का जन्म श्योपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ। मुक्तिबोध के पिता माधव राव ग्वालियर रियासत के पुलिस विभाग में थे। पिता के व्यक्तित्व के प्रभाव-स्वरूप मुक्तिबोध में ईमानदारी, न्यायप्रियता और दृढ़-इच्छा शक्ति का प्रति-फलन हुआ। सन् १९३५ में जाति, कुल और सामाजिक आचारों से लोहा लेते हुए प्रेम-विवाह किया। इन्होंने मुख्यतः अध्यापन कार्य किया। एक अरसे तक नागपुर से 'नया खून' साप्ताहिक का संपादन करने के बाद इन्होंने अध्यापन-कार्य अपनाया और अंत तक 'दिग्विजय महाविद्यालय', राजनांद गाँव (म.प्र.) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे।

इनकी कविताएँ पहली बार अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' (१९४३ ई०) में छपीं। इनकी कविताओं का एकमात्र संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (१९६४) छप पाया। इसके अलावा उनके दो कहानी संग्रह हैं। 'विपात्र' नामक एक उपन्यास और 'एक साहित्यिक की डायरी' उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। मुक्तिबोध की आलोचनात्मक कृतियाँ भी हैं—'कामायनी : एक पुनर्विचार', 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', 'नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'।

मुक्तिबोध का कवि-व्यक्तित्व जटिल है। ज्ञान और संवेदना के संश्लिष्ट स्तर से युगीन प्रभावों को ग्रहण करके प्रौढ़ मानसिक प्रतिक्रियाओं के कारण उनकी कविताएँ विशेष सशक्त हैं। मुक्तिबोध ने अधिकतर लंबी नाटकीय कविताएँ लिखी हैं जिनमें समसामयिक समाज, उनमें पलनेवाले अंतर्द्वंद्व और इन अंतर्द्वंद्वों से उत्पन्न भय, संत्रास, आक्रोश, विद्रोह और दुर्भाग्य संबंधी भावना के विविध रूप चित्रित हैं।

मुक्तिबोध की कविताओं में संपूर्ण परिवेश के बीच अपने आपको खोजने और पाने की ही नहीं, संपूर्ण परिवेश के साथ अपने आपको बदलने की प्रक्रिया का चित्रण भी मिलता है। इस स्तर पर मुक्तिबोध की कविता आधुनिक आत्मसजग व्यक्ति के आत्मसंघर्ष की कविता है।

अपने कर्म के प्रति ईमानदार होने के कारण मुक्तिबोध ने अपनी संवेदना और ज्ञान के अनुसार एक विशिष्ट काव्य-शिल्प का निर्माण किया है। फैंटेसी का सार्थक उपयोग मुक्तिबोध की कविताओं में ही देखने को मिलता है।

मुक्तिबोध ने कविता को दृढ़ राजनीतिक आधार दिया और हिन्दी में पहली बार यह स्पष्ट किया कि सार्थक कविता की सर्जना गहरे अर्थों में राजनीतिज्ञ कवि ही कर सकता है।

(क) मुझे क़दम-क़दम पर

मुझे क़दम-क़दम पर
चौराहे मिलते हैं
बाँहें फैलाए ! !

एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटतीं,
व मैं उन सब पर से गुज़रना चाहता हूँ;
बहुत अच्छे लगते हैं
उनके तजुर्बे और अपने सपने.....
सब सच्चे लगते हैं;
अजीब-सी अकुलाहट दिल में उभरती है,
मैं कुछ गहरे में उतरना चाहता हूँ,
जाने क्या मिल जाए ! !

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हरएक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
महाकाव्य-पीड़ा है,
पल भर मैं सब में से गुज़रना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ,
इस तरह खुद ही को दिए-दिए फिरता हूँ;
अजीब है ज़िंदगी ! !

बेवक़ूफ़ बनने के खातिर ही
सब तरफ़ अपने को लिए-लिए फिरता हूँ,
और यह देख-देख बड़ा मज़ा आता है
कि मैं ठगा जाता हूँ.....
हृदय में मेरे ही,
प्रसन्न-चित्त एक मूर्ख बैठा है

हँस-हँस कर अश्रुपूर्ण, मत्त हुआ जाता है,
कि जगत् ·····स्वायत्त हुआ जाता है।

कहानियाँ लेकर और
मुझको कुछ देकर ये चौराहे फैलते
जहाँ ज़रा खड़े होकर
बातें कुछ करता हूँ·····
····· उपन्यास मिल जाते।

दुख की कथाएँ, तरह-तरह की शिकायतें,
अहंकार-विश्लेषण, चारित्रिक आख्यान,
जमाने के जानदार सूरे व आयतें
सुनने को मिलती हैं।

कविताएँ मुसकरा लाग-डाँट करती हैं,
प्यार बात करती हैं।
मरने और जीने की जलती हुई सीढ़ियाँ
श्रद्धाएँ चढ़ती हैं!!

घबराए प्रतीक और मुसकाते रूप-चित्र
ले कर मैं घर पर जब लौटता·····
उपमाएँ, द्वार पर आते ही कहती हैं कि
सौ बरस और तुम्हें
जीना ही चाहिए।

घर पर भी, पग-पग पर चौराहे मिलते हैं,
बाँहें फैलाए रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएँ निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप-दृश्य वाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज़ मिलते हैं·····
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही

उसको सताता है,
और, वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है ! !

—चाँद का मुँह टेढ़ा है

(ख) एक पागल का गीत

"ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धांतवादी मन,
अब तक क्या किया ?
जीवन क्या जिया !!

उदरम्भरि बन अनात्म बन गए,
भूतों की शादी में क़नात-से तन गए,
किसी व्याभिचारी के बन गए बिस्तर,
दुखों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना,
अपने ही खयालों में दिन-रात रहना,
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,
जिंदगी निष्क्रिय बन गई तलघर,

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया !!
बताओ तो किस-किस के लिए तुम दौड़ गए,
करुणा के दृश्यों से हाय ! मुँह मोड़ गए,
बन गए पत्थर,
बहुत-बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम,
मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम ! !

लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,
जन मन-करुणा-सी माँ को हंकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य—त्याग दिए,
हृदय के मन्तव्य—मार डाले !

बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिए,
जम गए, जाम हुए, फँस गए,
अपने ही कीचड़ में धँस गए ! !
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गए !

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम ----"

—चाँद का मुँह टेढ़ा है

प्रश्न और अभ्यास

१. 'मुझे कदम-कदम पर चौराहे मिलते हैं' का भावार्थ स्पष्ट कीजिए।

२. इस कविता का मुख्य संदेश क्या है?

३. 'ओ मेरे आदर्शवादी मन' कविता में मनुष्य की किस मनोदशा का चित्रण हुआ है?

४. देश के मरने के किन-किन कारणों की ओर कवि ने संकेत किया है?

५. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :
(क) एक पैर रखता हूँ कि सौ राहें फूटतीं,
(ख) प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है।
(ग) बातें कुछ करता हूँ------ हैं उपन्यास मिल जाते
(घ) लेखक की कठिनाई------ चुनाव कर नहीं पाता।
(ङ) जीवन क्या जिया
(च) जिन्दगी निष्क्रिय बन गई तलघर।
(छ) मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम !!

: १९ :

रघुवीर सहाय

श्री रघुवीर सहाय (१९२९ ई०) का जन्म लखनऊ में हुआ। लखनऊ में ही इनकी शिक्षा हुई और लखनऊ विश्वविद्यालय से १९५१ में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया। आरंभ में रघुवीर सहाय ने कुछ दिनों तक 'प्रतीक' मासिक में सहायक संपादक का काम किया। फिर वे ऑल इंडिया रेडियो के हिन्दी समाचार विभाग में सहायक संपादक रहे। इसके बाद वे लगभग एक वर्ष तक हैदराबाद से निकलने वाली पत्रिका 'कल्पना' के संपादक रहे और फिर कुछ दिनों तक दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संवाददाता के रूप में संबद्ध रहे। आजकल वे 'दिनमान' के संपादक हैं।

रघुवीरसहाय की कविताएँ अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' (१९५२) में प्रकाशित हुईं। इनकी पहली समर्थ कृति 'सीढ़ियों पर धूप में' है, जो १९६० में छपी। इसमें कविताओं के अलावा कहानियाँ और लेख भी हैं। इसके अतिरिक्त 'आत्महत्या के विरुद्ध' (१९६७) और 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' (१९७४) आदि अन्य महत्त्वपूर्ण कविता-संग्रह हैं।

अनेक समकालीन कवियों की तरह रघुवीर सहाय भी केवल 'कवि' नहीं हैं, अच्छे गद्य-लेखक भी हैं। रघुवीर सहाय की कविताओं पर उनके पत्रकार जीवन का गहरा असर है, जो उनकी कविता को जानदार और प्रासंगिक बनाता है। पत्रकारिता से उनकी कविताओं में एक खास प्रकार की तथ्यात्मकता आई है। संक्षिप्त-सी सूचना, समाचार की कतरन, रोजमर्रा की बातचीत का अनचीन्हा लटका रघुवीर सहाय की कविता में आकर एक नवीन अर्थ धारण कर लेता है। वह मात्र 'तथ्य' न होकर 'सत्य' बन जाता है। जाने हुए और किए हुए जीवन को फिर से पहचाननेवाला प्रीतिकर आश्चर्य रघुवीर सहाय की कविताओं में मिलता है। अज्ञेय ने उनके बारे में लिखा है "उनकी सरल, साफ-सुथरी और अत्यंत सधी हुई भाषा इसके सर्वथा अनुकूल है। उनका संस्कार शहरी है तो किसी कृत्रिमता के अर्थ में नहीं, अच्छे घर में रोज काम आनेवाले बर्तनों में मँजते रहने के कारण जो चमक होती है—जो उन्हें अलमारी में सजाने की प्रेरणा न देकर सहज व्यवहार में लाने की प्रेरणा देती है—कुछ वैसी ही प्रीतिकर सहज ग्राह्यता उनकी भाषा में है।"

रघुवीर सहाय 'नई कविता' के समर्थ कवियों में गिने जाते हैं।

(क) धूप

देख रहा हूँ
लंबी खिड़की पर रखे पौधे
धूप की ओर बाहर झुके जा रहे हैं
हर साल की तरह गौरैया
अब की भी कार्निस पर ला-ला के धरने लगी है तिनके
हालांकि यह वह गौरैया नहीं
यह वह मकान भी नहीं
ये वे गमले भी नहीं, यह वह खिड़की भी नहीं
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की।

कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने-झरने को
और हल्की-सी हवा में और भी, जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है।

और वे पौधे बाहर को झुके जा रहे हैं
जैसे उधर से धूप इन्हें खींचे लिए ले रही है
और बरामदे में धूप होना मालूम होता है
जैसे ये पौधे बरामदे में धूप-सा कुछ ले आए हों।

और तिनका लेने फुर्र से उड़ जाती है चिड़िया
हवा का एक डोलना है : जिसमें अचानक
कसे हुए गुलाब की गमक है और गर्मियाँ आ रही हैं,
हालांकि अभी बहुत दिन है—
कितनी सही है मेरी पहचान इस धूप की।

और इस गौरैया के घोंसले की कई कहानियाँ हैं
पिछले साल की अलग और उसके पिछले साल की अलग
एक सुगंध है
बल्कि सुगंध नहीं एक धूप है
बल्कि धूप नहीं एक स्मृति है।

बल्कि ऊष्मा है, बल्कि ऊष्मा नहीं
सिर्फ़ एक पहचान है
हल्की-सी हवा है और एक बहुत बड़ा आसमान है
और वह नीला है और उसमें धुआँ नहीं है
न किसी तरह का बादल है
और एक हल्की-सी हवा है और रोशनी है
और यह धूप है, जिसे मैंने पहचान लिया है
और इस धूप से भरा हुआ बाहर एक बहुत बड़ा
नीला आसमान है
और इस बरामदे में धूप और हल्की-सी हवा और एक वसंत।

— सीढ़ियों पर धूप में

(ख) रामदास

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता, यह दिया गया था, उसको हत्या होगी।

धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह, उस दिन उसकी हत्या होगी।

खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रखकर
सधे कदम रख करके आए
लोग सिमट कर आँख गड़ाए
लगे देखने उसको, जिसकी तय था हत्या होगी।

निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फ़व्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी ?

भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
'देखो देखो' बार बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था हत्या होगी ।

—हँसो हँसो जल्दी हँसो

प्रश्न और अभ्यास

१. 'धूप' शीर्षक कविता में कवि ने धूप का सच्चा स्वरूप क्या बतलाया है ?

२. 'रामदास' कविता में वर्तमान जीवन की किस विवशता एवं विसंगति की ओर संकेत है ?

३. निम्नलिखित पंक्तियों के भाव स्पष्ट कीजिए :—

(क) और इस धूप से भरा हुआ बाहर एक बहुत बड़ा नीला आसमान है
और इस बरामदे में धूप और हल्की-सी हवा और एक बसंत ।

(ख) भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो-देखो बार-बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था हत्या होगी ।

:२० :

धूमिल

श्री सुदामा पांडेय 'धूमिल' (१९३६—१९७५ ई०) का जन्म वाराणसी के पास खेवली नामक गाँव में हुआ। हाई स्कूल पास करके रोजी की फ़िक्र में पड़ गए। १९५८ में आई० टी० आई० काशी से विद्युत डिप्लोमा कोर्स पास किया और वहीं पर विद्युत अनुदेशक के पद पर नियुक्त हो गए। असमय ही ब्रेन ट्यूमर से धूमिल की मृत्यु हो गई।

धूमिल की अनेक कविताएँ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं, कुछ अभी तक अप्रकाशित भी हैं। उनकी कविताओं का एक ही संग्रह छपा है—'संसद से सड़क तक' (१९७०)।

धूमिल के काव्य-संस्कारों के भीतर एक खास प्रकार का गँवईपन है—गँवई बड़बोलापन, जो उनके व्यंग्य को धारदार और कविता को असरदार बनाता है। उन्होंने अपनी कविता में समकालीन राजनीतिक परिवेश में जी रहे आमख्स 'व्यक्ति' की तस्वीर पेश करने का प्रयास किया है। मानव जीवन की मानवीयता के प्रति धूमिल के मन में अगाध करुणा है। पर धूमिल को ऐसा लगता है कि समकालीन परिवेश इस 'मानवीयता' का शत्रु है। अतः उनकी कविता में यही करुणा कहीं आक्रोश का रूप धारण कर लेती है तो कहीं व्यंग्य और चुटकुलेबाजी का।

धूमिल की कविता में समकालीन परिवेश को चिकोटी काटने का जो भाव मिलता है, उनके काव्य-शिल्प पर भी उसका असर पड़ा है। धूमिल की कविता 'मुक्तिधर्मी' कविता है। वे कुछ ऐसा कहना चाहते हैं जिसे सुनकर आप चौंकें। इससे उनकी कविता का समग्र प्रभाव बिखरा-बिखरा-सा लगता है।

फिर भी धूमिल की काव्य भाषा और काव्यशिल्प में एक बेदर्दस्त गर्माहट है—ऐसी गर्माहट जो बिजली के ताप से नहीं, जेठ की दुपहरी से आती है

मोचीराम

काँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाए हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला—
बाबूजी ! सच कहूँ—मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है

और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिसपर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग 'नवैयत'
बतलाते हैं
सबकी अपनी-अपनी शक्ल है
अपनी-अपनी शैली है

मसलन एक जूता है :
जूता क्या है—चकतियों की थैली है
इसे एक चेहरा पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उसपर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है ·
जैसे 'टेलीफून' के खंभे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है
'बाबूजी ! इस पर पैसा
क्यों फूँकते हो ?'
मै कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज़ लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ—भीतर से
एक आवाज़ आती है—'कैसे आदमी हो,
अपनी जाति पर थूकते हो ?'
आप यकीन करें, उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ

एक जूता और है जिससे पैर को
'नाध कर' एक आदमी निकलता है
सैर को
न वह अक्लमंद है
न वक्त का पाबंद है
उसकी आँखों में लालच है
हाथ में घड़ी है
उसे कहीं जाना नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है

'इसे बाँद्धो, उसे काट्टो, हियां ठ्ठोक्को, वहाँ पीट्टो
त्रिशा दो, अइसा चमकाओ, जुत्ते को ऐना बनाओ
.....ओफ्फ ! बड़ी गर्मी है, रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर 'आतियों-जातियों' को
बानर की तरह घूरता है
मरज यह कि घंटे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ 'नट' जाता है
'गरीफ़ों को लूटते हो' वह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक चिहुँककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है

चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं न कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अँगुली में गड़ती है

मगर इसका मतलब यह नहीं है
कि मुझे कोई गलतफ़हमी है
मुझे हर वक्त यह खयाल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है
और बाबूजी ! असल बात तो यह है कि जिंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोजी कमाने में

कोई फर्क नहीं है
और यही वह जगह है, जहाँ हर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है
सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस बसंत को ही लो,
यह दिन को तांत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले
धूप में, सीझने के लिए
लटकाता है

सच कहता हूँ—उस समय
रांपी की मूठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफ़त के पीछे
कोई जंगल है, जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है
मगर जो ज़िंदगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमज़ात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार ! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफ़हमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर

आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है, सच्चाई
सबसे होकर गुज़रती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ 'इनकार से भरी हुई एक चीख'
और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है—
भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख'
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फ़र्ज अदा करते हैं।

—संसद से सड़क तक

प्रश्न और अभ्यास

१. 'मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है', मोची के इस कथन का क्या तात्पर्य है?

२. इस कविता का मुख्य भाव अपने शब्दों में लिखिए।

३. इस कविता का व्यंग्य स्पष्ट कीजिए।

४. निम्नलिखित पंक्तियों का भावार्थ स्पष्ट कीजिए :—
(क) आजकल कोई आदमी जूते की नाप से बाहर नहीं है।
(ख) पेशेवर हाथों और..... एक अदद आदमी है।
(ग) भविष्य गढ़ने में..... अदा करते हैं।

: २१ :

मुहम्मद इक़बाल

डॉ० इक़बाल आधुनिक उर्दू साहित्य के महान कवि हैं। उनका जन्म पंजाब के स्यालकोट (अब पाकिस्तान में) सन् १८७७ ई० में हुआ। उनके पूर्वज कश्मीर के निवासी थे। अल्लामा इक़बाल की प्रारंभिक शिक्षा एक धार्मिक पाठशाला में हुई और उच्च शिक्षा लाहौर कालेज में हुई। शिक्षा समाप्ति के तुरंत बाद वे गवर्नमेंट कालेज लाहौर में प्रवक्ता बने।

डॉ० इक़बाल विद्यार्थी जीवन में ही कविता लिखने लगे थे। मुशायरों में उनकी कविताएँ प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगीं। सन् १८९६ में अंजुमन हिमायते इस्लाम के वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने 'नाला-ए-यतीम' शीर्षक से अपनी कविता पढ़ी। यह कविता इतनी लोकप्रिय हुई कि वे उर्दू साहित्यकारों में चर्चा का विषय बन गए। डॉ० इक़बाल उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा शोधकार्य के लिए विलायत चले गए और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। तदनंतर जर्मनी में म्यूनिख विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में भी पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वे लंदन से बार-एट-ला की उपाधि प्राप्त कर १९०८ में भारत लौट आए। डा० इक़बाल यूरोप के साहित्य एवं दर्शन से बहुत प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप वे संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावनाओं से ऊपर उठकर विश्वव्यापी मानवता के प्रबल समर्थक बन गए। साथ ही वे भौतिकवादी आस्था पर भी अपने काव्य द्वारा चोट करने लगे।

"सितारे मग़रिब के रहने वालो, ख़ुदा की बस्ती दुकां नहीं है।
जिसे ज़रा तुम समझ रहे थे, वो कल ज़रे कमियार होगा॥"

डॉ० इक़बाल के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता विषय की विविधता है। उन्होंने अपने युग के महापुरुषों पर ज़ोरदार कविताएँ लिखीं। 'भारत दुर्दशा', 'राष्ट्रीय एकता' तथा देश-प्रेम की कविताएँ उनकी भावना का परिचय देती हैं। 'हिन्दोस्तां हमारा' तथा 'नया शिवाला' कविता विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य में विचारों की गहनता और भावनाओं की सुकुमारता बेजोड़ मिलती है। अद्वैतवाद उनके काव्य का दार्शनिक आधार है, जिसमें ओज और प्रसाद गुण की स्रोतस्विनी प्रवहमान है। उनका काव्य शैलीगत विशेषताओं का खजाना है जिसमें रूपक-छवि तथा शब्दों के विलक्षण प्रयोग की क्षमता चार चाँद लगा देती है

उनकी रचनाएं फारसी और उर्दू साहित्य की अमर कृतियाँ हैं। 'बांगे दिरा', 'बाले जिब्रील', 'जबंकलीम', 'अरमुगाने हिजाज', उर्दू साहित्य की और 'पयामेयशरिक', 'जावेदनामा' आदि फारसी की विशेष उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

प्रतिभा बहुल डा० इकबाल स्वयं अपने विषय में कहते हैं—

"इकबाल' बड़ा उपदेशक है, मन बातों में मोह लेता है।
गुफ्तार का ये गाजी तो बना, किरदार का गाजी बन न सका।"

डॉ० इकबाल की मृत्यु सन् १९३८ ई० में हुई।

(क) परिन्दे की फ़रियाद

आता है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना
वो बाग़ की बहारें वह सब का चिहचिहाना।

आज़ादियाँ कहाँ वो अब अपने घोंसले की
अपनी ख़ुशी से आना, अपनी ख़ुशी से जाना।

लगती है चोट दिल पर, आता है याद जिस दम
शबनम के आँसुओं पर, कलियों का मुसकुराना।

वह प्यारी प्यारी सूरत, वह कामिनी-सी मूरत
आबाद जिसके दम से था मेरा आशियाना।

आई नहीं सदाएँ उसकी मेरे क़फ़्स में
होती मेरी रिहाई अय् काश ! मेरे बस में।

क्या बदनसीब हूँ मैं, घर को तरस रहा हूँ
साथी तो हैं वतन में, मैं क़ैद में पड़ा हूँ।

आई बहार कलियाँ फूलों की हँस रही हैं
मैं इस अंधेरे घर में क़िस्मत को रो रहा हूँ।

इस क़ैद का इलाही, दुखड़ा किसे सुनाऊँ
डर है यहीं क़फ़्स में मैं ग़म से मर न जाऊँ।

जब से चमन छुटा है, यह हाल हो गया है
दिल ग़म को खा रहा है, ग़म दिल को खा रहा है।

गाना इसे समझ कर खुश हों न सुननेवाले
दुखते हुए दिलों की फ़रियाद यह सदा है।

आज़ाद मुझको कर दे, ओ क़ैद करनेवाले
मैं बेज़बाँ हूँ क़ैदी, तू छोड़कर दुआ ले।

(ख) नया शिवाला

सच कह दूँ ऐ बरहमन गर तू बुरा न माने
तेरे सनमकदों के बुत हो गए पुराने।

अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा
जंग-ओ-जदल सिखाया वाइज़ को भी खुदा ने।

पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है
खाक़-ए-वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है।

आ, ग़ैरियत के परदे इक बार फिर उठा दे
बिछड़ों को फिर मिला दें, नक्शे-दुई मिटा दें।

सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती
आ, इक नया शिवाला इस देस में बना दें।

दुनिया के तीरथों से ऊँचा हो अपना तीरथ
दामाने-आस्माँ से इसका कलस मिला दें।

हर सुबह उठके गाएँ मन्तर-वो-मीठे-मीठे
सारे पुजारियों को मय प्रीत की पिला दें।

शक्ती भी शान्ती भी भगतों के गीत में है
धरती के बासियों की मुक्ती पिरीत में है।

(ग) मन की दुनिया ! सुराग़े ज़िन्दगी

फिर चराग़े-लाला से रोशन हुए कोह-ओ-दमन
मुझको फिर नग़मों पे उक्साने लगा मुर्ग़े-चमन।

फूल हैं सहरा में या परियाँ क़तार अन्दर क़तार
ऊदे ऊदे, नीले नीले, पीले पीले, पैरहन।

बर्गे-गुल पर रख गई शबनम का मोती बादे सुबह
और चमकाती है इस मोती को सूरज की किरन।

हुस्न-ए-बेपरदा को अपनी बेनक़ाबी के लिए
हों अगर शहरों से बन प्यारे तो शहर अच्छे के बन ?

अपने मन में डूब कर पा जा सुराग़-ए-ज़िन्दगी
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन, अपना तो बन।

मन की दुनिया ? मन की दुनिया सोज़-ओ-मस्ती ज़ब्ब-ओ-शौक
तनकी दुनिया ? तनकी दुनिया सूद-ओ-सौदा मक्र-ओ-फ़न।

मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
तन की दौलत छाँव है! आता है धन, जाता है धन!

मन की दुनिया में न पाया मैंने अफ़रंगी का राज
मन की दुनिया में न देखे मैंने शेख-ओ-बरहमन।

पानी पानी कर गई मुझको क़लन्दर की यह बात
तू झुका जब ग़ैर के आगे न मन तेरा, न तन।

प्रश्न और अभ्यास

१. पक्षी को अपने बीते जमाने की क्या-क्या बातें याद आ रही हैं?

२. 'परिन्दे की फ़रियाद' व्यथित हृदयों की फ़रियाद क्यों कही गई है?

३. बंदी पक्षी की प्रार्थना की विशेषता बताइए।

४. 'नया शिवाला' कविता के आधार पर नए शिवाले के निर्माण की उत्कट इच्छा के कारण स्पष्ट कीजिए।

५. 'नए शिवाले' की क्या-क्या विशेषताएँ बताई हैं और क्यों?

६. परंपरागत तथा कवि के नए शिवाले के अंतर को स्पष्ट कीजिए। कवि के अनुसार जीवन-रहस्य को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

७. तन की दुनिया और मन की दुनिया' का अंतर स्पष्ट कीजिए।

८. निम्नलिखित अंशों के भाव स्पष्ट कीजिए :—

(क) जब से चमन छुटा है, यह हाल हो गया है,
दिल ग़म को खा रहा है, ग़म दिल को खा रहा है।

(ख) शक्ती भी शांती भी भगतों के गीत में है,
धरती के वासियों की मुक्ती पिरीत में है।

(ग) आ, ग़ैरियत के परदे इक बार फिर उठा दे,
बिछड़ी को फिर मिला दे, नक्शे दुई मिटा दे।

(घ) पानी पानी कर गई मुझको कलन्दर की यह बात,
तू झुका जब ग़ैर के आगे तो मन तेरा न तेरा तन।

(छ) अपने मन में डूबकर पी जा सुरासी जिन्दगी,
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन।

: २२ :

अली सरदार जाफ़री

आधुनिक उर्दू साहित्य के प्रगतिशील कवियों में अली सरदार जाफ़री का प्रमुख स्थान है। सरदार जाफ़री का जन्म उत्तरप्रदेश स्थित बलरामपुर जिला गोंडा में सन् १९१३ ई० में हुआ। अपने नगर के ही हाई स्कूल से इन्होंने दसवीं कक्षा पास की फिर उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में उन्होंने विद्यार्थी आंदोलन में सक्रिय भाग लिया परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिए गए। इसी समय वे प्रगतिशील लेखकों के संपर्क में आए। ख्वाजा अहमद अब्बास और मजाज से वे बहुत प्रभावित हुए।

सरदार जाफ़री की प्रारंभिक काव्य-रचनाएँ शोकगीत (मार्सिया) के रूप में थीं। बाद में मार्क्सवादी चिंतन के प्रभाव से इन्होंने शोषित मानव और उसके संघर्ष को अपना काव्य-विषय बनाया। साम्यवादी दल के सक्रिय सदस्य होने के नाते उन्होंने दलित वर्ग के जीवन का सूक्ष्म दर्शन किया और शोषित वर्ग को नई प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करने के लिए ओजपूर्ण रचनाओं का सृजन किया। उनका व्यक्तित्व प्रगतिशील आंदोलन एवं सृजन का सुगम संगम है।

सरदार जाफ़री केवल शोषित वर्ग के दुखों से ही द्रवीभूत नहीं हुए, वरन् वे युद्ध की विभीषिका से भी व्याकुल हो उठते हैं और प्रेम, करुणा और शांति का अमर संदेश भी देते हैं। इस संदर्भ में 'मुझे-फ़रदा' उनकी प्रभावशाली रचना है। 'परवाज़', 'नई दुनिया को सलाम', 'खून की लकीर', 'एशिया जाग उठा' और 'पत्थर की दीवार' उनकी अमर कृतियाँ हैं।

सरदार जाफ़री जनसाधारण के प्रिय कवि हैं। इनकी भाषा सरल और सुबोध है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ-संकेतों की बहुलता उनके काव्य को गरिमा प्रदान करती है।

(क) मेरा सफ़र

फिर इक दिन ऐसा आएगा
आँखों के दिये बुझ जाएँगे
हाथों के कँवल कुम्हलाएँगे
और वर्ग - ज़बा से नुत्को - सदा
की हर तीखी उड़ जाएगी
इक काले समंदर की तह में
कलियों की तरह से खिलती हुई
फूलों की तरह से हँसती हुई
सारी शकलें खो जाएँगी
ख़ की गर्दिश, दिल की धड़कन
सब रागिनियाँ सो जाएँगी
और नीलो फ़ज़ा की मख़मल पर
हँसती हुई हीरे की यह कनी
यह मेरी जन्नत, मेरी ज़मीं
इसकी सुबहें, इसकी शामें
बेजाने हुए, बेसमझे हुए
इक मुश्ते-गुबारे-इंसां पर
शबनम की तरह रो जाएँगी
हर चीज़ भुला दी जाएगी
यादों की हसीं बुतखाने से
हर चीज़ उठा दी जाएगी
फिर कोई नहीं यह पूछेगा
सरदार कहाँ है महफ़िल में

लेकिन मैं यहाँ फिर आऊँगा
बच्चों के दहन से बोलूँगा
चिड़ियों की ज़बाँ से गाऊँगा
जब बीज हँसेंगे धरती में
और कोंपलें अपनी उँगली से

मिट्टी की तहों को छेड़ेंगी
मैं पत्ती-पत्ती, कली-कली
अपनी आँखें फिर खोलूँगा
सरसब्ज हथेली पर लेकर
शबनम के क़तरे तोलूँगा
मैं रंगे-हिना आहंगे-ग़ज़ल
अन्दाज़े-सुख़न बन जाऊँगा
रुख़सार-उरूसे नौ की तरह
हर आँचल से छन जाऊँगा
जाड़ों की हवाएँ दामन में
जब फ़सल-ख़िज़ाँ को लाएँगी
रहरी के जवाँ क़दमों के तले
सूखे हुए पत्तों से मेरे
हँसने की सदाएँ आएँगी
धरती की सुनहरी सब नदियाँ
आकाश की नीली सब झीलें
हस्ती से मेरी भर जाएँगी
और सारा ज़माना देखेगा
हर क़िस्सा मेरा अफ़साना है
हर आशिक़ है सरदार यहाँ
हर माशूक़ा सुल्ताना है

मैं एक गुरेज़ाँ लमहा हूँ
अय्याम के अफ़सूँख़ाने में
मैं एक तड़पता क़तरा हूँ
मसरुफ़े-सफ़र जो रहता है
माज़ी की सुराही के दिल से
मुस्तक़बिल के पैमाने में
मैं सोता हूँ और जागता हूँ
और जाग के फिर सो जाता हूँ
सदियों का पुराना खेल हूँ मैं
मैं मर के अमर हो जाता हूँ

(ब) हाथों का तराना

इन हाथों की ताज़ीम करो
इन हाथों की तकरीम करो
दुनिया के चलानेवाले हैं
इन हाथों को तसलीम करो

तारीख के और मशीनों के पहियों की रवानी इनसे है
दुनिया का फ़साना इनसे है, इंसां की कहानी इनसे है
तहज़ीब की और तमद्दुन की भरपूर जवानी इनसे है
इन हाथों की ताज़ीम करो

सदियों से गुज़रकर आए हैं, यह नेक और बद को जानते हैं
यह दोस्त हैं सारे आलम के, पर दुश्मन को पहचानते हैं
खुद शक्ति का अवतार हैं यह, कब ग़ैर की शक्ति मानते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

है ज़ख्म हमारे हाथों के, यह फूल जो हैं गुलदानों में
सूखे हुए प्यासे चुल्लू थे जो जाम हैं अब मयखानों के
टूटी हुई सौ अँगड़ाइयों की मेहराबें हैं एवानों में
इन हाथों की ताज़ीम करो

राहों की सुनहरी रोशनियाँ, बिजली के जो फैले दामन हैं
फ़ानूस हसीं एवानों के, जो रंग और नूर के खिरमन हैं
यह हाथ हमारे जलते हैं, यह हाथ हमारे रौशन हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

खामोश हैं यह खामोशी से, सौ बरबतो चंग बनाते हैं
तारों में राग सुलाते हैं, बतलों में बोल छुपाते हैं
बन साज में जुम्बिश होती है, तब हाथ हमारे गाते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

एजाज़ है यह इन हाथों का, रेशम को छुएँ तो आँचल है
पत्थर को छुएँ तो बुत कर दें, कालिख को छुएँ तो काजल है
मिट्टी को छुएँ तो सोना है, चाँदी को छुएँ तो पायल है
इन हाथों की ताज़ीम करो

बहती हुई बिजली की लहरें सिमटे हुए गंगा के धारे
धरती के मुक़द्दर के मालिक, मेहनत के उफ़क़ के सैयारे
यह चारागराने-दर्दे जहाँ, सदियों से मगर खुद बेचारे
इन हाथों की ताज़ीम करो

यह कितने सुबुक और नाजुक हैं यह कितने सुडौल और अच्छे हैं
चालाकी में उस्ताद हैं यह, और भोलेपन में बच्चे हैं
इस झूठ की गंदी दुनिया में बस हाथ हमारे सच्चे हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

यह सरहद सरहद जुड़ते हैं और मुल्कों मुल्कों जाते हैं
बाँहों में बाँहें डालते हैं और दिल से दिल को मिलाते हैं
फिर जुल्मो-सितम के पैरों की जंजीरें-गिराँ बन जाते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो

तामीर तो इनकी फ़ितरत है, इक और नयी तामीर सही
इक और नई तदबीर सही, इक और नई तक़दीर सही
इक शोखो-हसीं ख्वाब और सही इक शोखो-हसीं ताबीर सही

इन हाथों की ताज़ीम करो
इन हाथों की तकरीम करो
दुनिया के चलानेवाले हैं
इन हाथों को तसलीम करो

(ग) सुब्हे-फ़रदा

इसी सरहद पे कल डूबा था सूरज होके दो टुकड़े
इसी सरहद पे कल जख्मी हुई थी सुब्हे-आजादी
यह सरहद खून की, अश्कों की, आहों की, शरारों की
जहाँ बोई थी नफ़रत और तलवारें उगाई थीं

यहाँ महबूब आँखों के सितारे तिलमिलाए थे
यहाँ माशूक चेहरे आँसुओं में झिलमिलाए थे
यहाँ बेटों से माँ, प्यारी बहन भाई से बिछड़ी थी

यह सरहद जो लहू पीती है और शोले उगलती है
हमारी खाक के सीने पे नागन बनके चलती है
सजाकर जंग के हथियार मैदाँ में निकलती है
मैं इस सरहद पे कब से मुतजिर हूँ सुब्हे-फ़रदा का
यह सरहद फूल की, खुशबू की, रंगों की, बहारों की
धनक की तरह हँसती, नदियों की तरह बल खाती
वतन के आरिज़ों पर ज़ुल्फ़ के मानिन्द लहराती
महकती, जगमगाती, इक दुल्हन की माँग की सूरत
कि जो बालों को दो हिस्सों में तो तकसीम करती है
मगर सिन्दूर की तलवार से, सन्दल की उँगली से

यह सरहद दिलबरों की, आशिकों की, बेक़रारों की
यह सरहद दोस्तों की, भाइयों की, ग़मगुसारों की
सहर को आए खुर्शिद-दरख़शाँ पास्बाँ बनकर
निगहबानी हो शब को आस्माँ के चाँद-तारों की
जमीं पामाल हो जाए, भरे खेतों की यूरिश से
सिपाहें हमला-आवर हों, दरख़्तों की क़तारों की
खुदा महफ़ूज रक्खे इसको ग़ैरों की निगाहों से
पड़ें नज़रें न इस पर खूँ के ताजिर ताजदारों की
कुचल दें इसको फौलादी क़दम भारी मशीनों के
करे यलग़ार इस पर ज़र्ब-कारी दस्तकारों की
उड़ें चिंगारियों के फूल पत्थर के कलेजे से
झुके तेशां की मेहराबों में गर्दन कोहसारों की
लबों की प्यास ढाले अपने खाकी अपने पैमाने
चमक उट्ठे मसर्रत से निगाहें सोगवारों की

मुहब्बत हुक्मराँ हो, हुस्न क़ातिल, दिल मसीहा हो
चमन में आग बरसे शोला-पैकर गुल-इज़ारों की
वह दिन आए कि आँसू होके नफ़रत दिल से बह जाए
वह दिन आए यह सरहद बोस-ए-लब बनके रह जाए
यह सरहद मनचलों की, दिलजलों की, जाँनिसारों की
यह सरहद सरज़मीने दिल के बाँके शहसवारों की
यह सरहद कजकुलाहों की, यह सरहद कजंबदाओं की
यह सरहद गुलशने लाहौरो-दिल्ली की हवाओं की

यह सरहद अम्नो-आजादी के दिल-अफ़रोज़ ख्वाबों की
यह सरहद डूबते तारों, उभरते आफ़ताबों की
यह सरहद खू में लिथड़े प्यार के ज़ख्मी गुलाबों की
मैं इस सरहद पे कब से मुंतज़िर हूँ सुब्हे-फ़रदा का

प्रश्न और अभ्यास

१. मृत्यु के बाद भी कवि संसार में किन रूपों में अमर रहेगा ?

२. श्रमिकों का सम्मान करने का कवि ने क्यों आह्वान किया है ?

३. कवि ने इस संसार में श्रमिकों के हाथ को ही क्यों सच्चा कहा है ?

४. देश की सीमा को देखने के राजनीतिज्ञ और कवि के नज़रिये का अंतर स्पष्ट कीजिए।

५. कवि भारत-पाक सीमा के किस रूप का आकांक्षी है ?

६. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए—

(क) और सारा ज़माना देखेगा
हर क़िस्सा मेरा अफ़साना है
हर आशिक़ है सरदार यहाँ,
हर माशूका सुल्ताना है।

(ख) मैं सोता हूँ और जागता हूँ
और जाग के फिर सो जाता हूँ।
सदियों का पुराना खेल हूँ मैं,
मैं मर के अमर हो जाता हूँ।

(ग) तारीख के और मशीनों के पहियों को रवानी इनसे है।
दुनिया का फसाना इनसे है, इंसां की कहानी इनसे है।

(घ) एजाज है यह ..... तो पायल है।

(ङ) इसी सरहद से कल डूबा था सूरज होके दो टुकड़े,
इसी सरहद पे कल ज़ख्मी हुई थी सुब्हे आजादी।

(च) चमक उट्ठे मसर्रत से निगाहें सोगवारों की,
मुहब्बत हुक्मरां हो, हुस्न क़ातिल, दिल मसीहा हो।

शब्दार्थ

कबीरदास

('साखी' शब्द 'साक्षी' से बना है जिसका अर्थ होता है 'प्रत्यक्ष ज्ञान।' इन साखियों में गुरु शिष्य को जीवन के तत्त्व ज्ञान की शिक्षा देता है।)

(२) भावै=चाहे। (३) दुख दालिद=दुख-दारिद्र्य। (५) दसवाँ द्वारा=दसवाँ द्वार, ब्रह्मरंध्र। पिछानि=पहचान ले। (६) देहुरै=मंदिर में। स्यौ लाइ=लौ लगाले। (९) सबूरी=सब्र। साबित=अखंड, शुद्ध। (१०) जूड़े=ठंडा। गरासा जाइ=ग्रसे जा रहा है। (११) स्वामीपना=स्वामित्व, अहंभाव, कर्तापन। (१२) खटाइ=मर-मरकर। हरहाई=वह गाय जिसे पराया खेत चरने की आदत पड़ जाती है। (१) कोंठी काठ की=शरीर। दह दिसि=दसों दिशाएँ अर्थात् दसों इंद्रियाँ। (१६) पटतर=बराबरी में। (१९) पखा पखी=इधर-उधर के पक्षों या पंथों में। (२२) खालिक=सृष्टिकर्ता। (२३) दुलीचा=कालीन या गलीचा।

पद

डिंभ=दंभ, आडंबर। मुरीद=मुराद करनेवाला, मनौती माँगनेवाला जिबह=हलाल। (३) असबरवा=सवार। धरवा=धार। दियना=दीपक (४) उनमुनि=उन्मन, उदास।

जायसी

बारहमासा

विरह वर्णन के प्रसंग में ऋतु वर्णन की सामान्यतः दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं: षट्ऋतु वर्णन और बारहमासा। षट्ऋतु वर्णन संस्कृत महाकाव्यों का अनिवार्य अंग था। अपभ्रंश और हिन्दी में बारहमासा को स्थान मिला है जिसके मूल में लोक साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। लोक साहित्य में प्रचलित बारहमासा प्रायः आषाढ़ से आरंभ होकर जेष्ठ में समाप्त होता है। यही पद्धति जायसी ने भी अपनाई है।

दोहा (१) गाजा=गरजने लगा। खरग बीज=बिजली रूपी खड्ग। अद्रा=आर्द्रा नक्षत्र। भुई=भूमि। आनै=झुक गई है। बेझ=बेधना। पुख=पुष्य नक्षत्र। नाह=नाथ, स्वामी। गारौ=अभियान। दोहा (२) अतिवानी=अत्यधिक। भरनि=मूसलाधार वर्षा। झुरानी=मुरझा जाना। तरेखा=चतुर। भंभीरा=एक प्रकार का [illegible] चक्कर लगाकर [illegible]

रहता है। ढंख=ढाक वृक्ष। दोहा (३) पूरौं=पूरी करूँ। अनतै=अन्यत्र। भै=हो गई। धं धं=दौड़-दौड़ कर। तरासा=त्रास देते हैं, डराते हैं। गरासा=ग्रस लेता है। ओरी=ओलती, छप्पर से चूने वाली पानी की बूँदें। पुहुमि=पृथ्वी। झूरी=सूख गए हैं। अगाह=अगाध। दोहा (४) परभूमि-लटा=परदेस में लिप्त रहनेवाला। पलुहै=पल्लवित होना। तुरय=तुरंग, घोड़ा। पलान=जीन। चित्रा मित्र मीन घर आवा=चित्रा नक्षत्र का मित्र चंद्रमा है। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ भी स्पष्ट है—हे मेरे चित्र के मित्र, मीन राशि में तो तुम घर आ जाओ। अवगास=अवकाश, जगह, मैदान। बाजहु=पहुँचो। गाजहु=गर्जना करो। होइ सुद्दूल=शार्दूल (शेर) बनकर, भाव यह है कि रत्नसेन रूपी शेर की गर्जना से विरह रूपी हाथी दूर भाग जाएगा। दोहा (५) करा=कला। अगिडाह=अग्निदाह। मुनिवरा=सप्तर्षि, सौभाग्यवती स्त्रियाँ कार्तिक की पूर्णिमा को सप्तर्षियों की पूजा करती हैं। सवति=सौत। दोहा (६) सीऊ=सीत। सियरी=सीरी, शीतल। संदेसरा=संदेशा, 'ड़ा' प्रत्यय में प्रेम की व्यंजना। धनि=स्त्री। बहुरा=लौटकर। दोहा (७) सूरज=सूरज। लंक दिसि=लंका की दिशा, दक्षिण दिशा। सौर सुपेती=जाड़े के ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र। हिवंचल=हिम, बरफ। सचान=बाज पक्षी। चाँड़ा=प्रचंड। रटि=रट-रटकर। दोहा (८) माह=माघ मास। पहल पहल=तह पर तह। झाँपे=छिपाना या ढँकना। हहलि हहलि=हहर-हहरकर। रस मूल=मूल रस (शृंगार रस)। मौहट=महावट, माघ मास की वर्षा। झोला=झोंका। पटीरा=रेशमी वस्त्र। गिय=ग्रीवा, गर्दन। हरुई=हलकी पड़ गई। मकु=संभवतः। तिनुवर=तिनकों का ढेर। झोल=भस्म या गरम राख। दोहा (९) पियर=पीला। झोरा=झोरना, पेड़ से पत्ते गिराना। करि=हाथी। बनाफति=वनस्पति। चाँचरि=एक शृंगार प्रधान गीत या नृत्य जो फागुन में गाया जाता है। दोहा (१०) धमारी=धमार, होली का एक राग। पंचम विरह ···· ढारे=यहाँ 'सारे' और 'ढारे' क्रिया का कर्ता कोयल है जो छिपा हुआ है। मजीठ=एक लता जिसके गोल-गोल पत्तों से लाल रंग तैयार किया जाता है। मोरे=मेरे। औध=अवधि। सँवरि=स्मरण करके। नारंग=नारंगी। सोवा=सुग्गा। घिरिनि परेवा=परेवा अर्थात् एक प्रकार का कबूतर (लोटन कबूतर)। दोहा (१०) बज्रागि=वज्राग्नि। सूरज ···· होका=जला हुए सूर्य ने हिमालय की ओर दिशा ली है। इस स्थिति में विरह वज्राग्नि बनकर सामने रथ लेकर आ रहा है। टूटा=टूट जाना। भाड़=भाड़। दवंगरा=दौगरा, अषाढ़ की पहली ···· मेरवहु=मिलाओ। दोहा (११) लुवारा=लू, गरम पवन ···· जान। डहि=दाहि, जलाकर। पलंका=पलंग। दहि=दहकर, जलकर ···· अँगार।

सूरदास

(यों तो 'सूरसागर' गीतिकाव्य के अंतर्गत आता है, लेकिन उसमें कथावस्तु और नाटकीय परिस्थितियों का बहिष्कार नहीं है। यहाँ-सूरसागर के मूल कथा-बिंदुओं को लिया गया है। इन कथा-बिंदुओं के अंतर्गत सूर ने नए-नए प्रसंगों की उद्भावना की है जिससे सूरसागर अनजाने ही 'गीतिकाव्य के भीतर से महा-काव्य के रूप में प्रकट हुआ है।)

(१) सनक-गुनी=ज्योतिषी और गुणी लोग। (२) थुनि=स्तंभ। (३) सैन =संकेत या इशारा। (४) काजरी-धौरी=काली-सफेद। नावत=लगा लेते हैं। (५) रहठि=रखने की क्रिया। ग्वर्या=साथी। (६) ब्रज-खोरी=ब्रज की संकरी गलियाँ। भौंरा=खेलने का लट्टू। चक=चकई नाम का खिलौना। रवि-तनया=सूर्य की पुत्री अर्थात् यमुना। औचक=अचानक। फरिया= बच्चियों के पहनने का लहँगा। (७) ब्रज-तन=ब्रज की ओर। ढोटा=बेटा। (८) गाय=गा रहे हैं, मीठी-मीठी बातें कर रहे हैं। (१०) भाइ-भेद=भाव-भेद, नृत्य में विभिन्न प्रकार के भावों को प्रस्तुत करनेवाली। खंजन-मीन..... पिक=ये प्रसिद्ध उपमान गोपियों के विभिन्न प्रकार के सौंदर्य को व्यक्त करते हैं, खंजन और मीन आँख के लिए, हंस चाल के लिए, कोयल मधुर वाणी के लिए, मयूर गर्दन के लिए प्रयुक्त हुए है। (११) कनौड़े=क्रीतदास। (१२) उपमा नैनन एक रही=कवि ने बताया है कि आँखों की प्रसिद्ध सब उपमाएँ झूठी हो गईं। केवल मछली की उपमा सार्थक लग रही है, क्योंकि वह हमेशा पानी में डूबी रहती है। (१४) डसि उलटी ह्वै जात=यदि कहीं रात में चाँदनी निकल आई तो वह सर्पिणी की भाँति काटने लगती है। सर्पिणी के पेट का रंग चाँदनी की तरह सफेद होता है। लहर=सर्पिणी के काटने पर जब ओझा लोग गाते हैं तो व्यक्ति झूमने लगता है, उसी को लहर कहते हैं। (१५) उनए=झुके। पगरा=प्रातःकाल, यात्रा का समय। (१६) सौंह=सौगन्ध। गाँसी=छल। (१७) अपरस=रस से दूर। तकादे=तकाजा। परागी=अनुरक्त। (१८) मधुबन=मथुरा। (१९) हारिल=एक पक्षी जो दूर समय अपने पंजे में एक लकड़ी दबाए रखता है। चकरी=चकित, भ्रमित। (२०) हंस सुता=सूर्य की बेटी, यमुना। खरिक=गायों का बाड़ा।

तुलसीदास

रामवासियों के जीव बनवासी राम

(यह अंश 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड से लिया गया है। वन के मार्ग में ग्रामवासी राम-सीता-लक्ष्मण को वन जाते हुए देखते हैं, उनके सौन्दर्य पर वे मुग्ध होते हैं और तरह-तरह से अपना प्रेम व्यक्त करते हैं।)

(दोहा १) सुरमनि=चिंतामणि : इस मणि से, जो माँगो वह देने की सामर्थ्य इसमें है। लाहु=लाभ। (दोहा २) घरिक=घड़ी भर। तूनीरा=तूणीर, तरकश। (दोहा ३) दिआसे=दीपक के समान। बिलगु न मानब=बुरा न मानना। सर्बरीनाथ=शर्बरीनाथ, चंद्रमा। (४) आहिं=हैं। दुहुँ संकोच=दुहरा संकोच, (पहला, यदि ग्रामवधुओं को उत्तर न दिया तो यह शिष्टाचार के विरुद्ध होगा और दूसरा, पति के सामने उनका परिचय कैसे दें।) दैअहिं=देव को। रूख=रुखा-सूखा। (दोहा ६) पदत्राना=पदत्राण, जूता, खड़ाऊँ आदि। (दोहा ७) असन=भोजन। पटतर=तुलना, बराबरी। गहबरि हृदय=भरे हृदय से। भागा=भाग्य। (९) कैरव=कुमुद। चंदू=चंद्रमा। भानुकुल=सूर्यवंश। नरनाहू=नरनाथ, राजा।

कवितावली

(ये पंक्तियाँ 'कवितावली' के उत्तरकांड से ली गई हैं। यहाँ कवि ने अपने जीवन और समाज के विविध तथ्यों पर प्रकाश डाला है। अतः कवि के जीवन और युग को स्पष्ट करने में इनसे विशेष सहायता मिलती है।)

(१) धूत=धूर्त। अवधूत=परमहंस, नाथपंथी संन्यासी। सरनाम=प्रसिद्ध। मसीत=मस्जिद। माँगि कै—····· सोइबो=यह लाक्षणिक प्रयोग है जिसका भाव है कि जो कुछ मिला वह खा लिया और जहाँ स्थान मिला वहाँ सो गए। (२) किसबी=श्रमजीवी, मजदूर। चेटकी=बाजीगर। अहन=दिन। (३) साँकरे=संकट में। दारिद दसानन=दारिद्र्य रूपी रावण। दुरित दहन=पाप रूपी ज्वाला। बलि=चढ़ावा। सीद्यमान=दुखी।

गीतावली

('गीतावली' में गीतों के माध्यम से रामकथा कही गई है। 'रामचरितमानस' में जीवन के कुछ कोमल-मधुर प्रसंगों को जानबूझ कर दबाया गया है। शायद इनके समावेश से 'मानस' की प्रबंधात्मकता को आघात पहुँचता। गीतावली में ऐसे प्रसंगों को मार्मिक और गीतिमय अभिव्यक्ति मिली है।)

(१) सीम=सीमा। तरनि=सूर्य। मेचक=बाल, केश। लरनि=होड़। कुहरनि=बिल। दुरि डरनि=डरकर छिप गई है। (भाव यह है कि राम की भुजाओं, नयन और मुख के उपमान साँप, कमल और चंद्रमा डरकर क्रमशः बिल, नदी और आकाश में छिप गए हैं।) (२) मयन=कामदेव। लह्यो=प्राप्त कर लिया। लैनि=लावण्य, सौंदर्य, मक्खन। (३) सुरतरु=कल्पवृक्ष। बिताग=संयोग। तटनि=नदी। बरहि=मोर। ऋतुपति=वसंत। संतत=निरंतर।

पंचबान = कामदेव के पाँच पुष्प बाणों के नाम हैं—कमल, अशोक, आम्र, नव-मल्लिका और नीलोत्पल। धातुराग = गेरु। (४) सायक जोरे = बाण चढ़ाए हुए। खोरे = खंड, बिन्दु। गौ है = निकाले की ओर। उकोरे = सिकोड़कर। मोचत = छोड़ते। मिति = सीमा। (१) पनक = ज्योतिषी।

विनयपत्रिका

('विनयपत्रिका' तुलसी के आत्मनिवेदनपरक गीतों का संग्रह है। इसमें आराध्य के प्रति कवि की आत्मीयता, तन्मयता, आत्मनिवेदन और स्वतः स्फूर्त पेयता देखते ही बनती है।)

(१) जग-जोनि = जगत् की योनियाँ। (२) दुरित = पाप। दारिद = दारिद्र्य। तिहुँ ताप = दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के ताप। आरत = आर्त्त। तई है = जली जा रही है। रिस = क्रोध। हेतुवाद = नास्तिकता। सीदत = दुःखी होना। गौमर = कसाई (गाय मारनेवाला)। जामत न बई है बोया हुआ जमता नहीं है। रितई है = रीत गई है, खाली हो गई है। साँसति = मुसीबत। उथपे थपन = उजड़े हुए को स्थापित करनेवाले। (३) सफरी = मछली। सुरसरी = गंगा नदी। पिपीलिका = चींटी। द्वैत वियोगी = द्वैत से रहित।

बिहारी

(बिहारी ने सौंदर्य और प्रेम के मनोरम चित्र खींचे हैं। उनके नीति विषयक दोहे भी सामान्य मानव व्यवहार को पृष्ठभूमि में लेकर चले हैं।)

(२) आतप = धूप। (४) अनियारे = कोरदार। (५) झुलमुली = कान का आभूषण विशेष। ओप = कांति। (६) ताफ़्ता = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा, धूपछाँह। (७) सहज = सादा, सामान्य। पंचतोरिया = एक प्रकार का बहुत ही महीन कपड़ा जिसकी पूरी साड़ी तौल में केवल पाँच तोले की (पंचतोलिया) होती है। (८) गहि रहतु = पकड़ लेता है, आकृष्ट कर लेता है। (९) तरनिजा = यमुना। तरौंस = तट के निकट। खिनकु = क्षण भर में। (१०) पजारति = जला रही है। (११) यह दोहा असंगति अलंकार का उत्तम उदाहरण है। खरौहो = खारा। (१२) देखत बनै न = लज्जावश देखते नहीं बनता। (१४) बौरी = बावली। सीतकर = शीतल किरणों वाला, चंद्रमा। (१५) बीछुरे = बिछुड़ गए। गुड़ी = गुड्डी, पतंग। (१६) टटकी = तुरंत की। धोवती = धोती। बगर = घर। (१७) सयी = शयीह, यथार्थ चित्र। कूर = मूढ़मति। (१९) बतरस = बातचीत का रस। (२०) बरु फटै = चाहे फट क्यों न जाए। चोल रंग = चोल एक प्रकार की लकड़ी होती है जिसे औटाकर लाल रंग निकाला जाता है। यह

रंग बड़ा पक्का होता है। (२३) दुराज = द्विराज्य, दुअमली, दुहरा शासन। दुख-दंद = दुःख-द्वंद्व। (२४) झूठे = (१) उच्छिष्ट (२) मिथ्या। न संग्रहे = (१) काम का नहीं समझना (२) भरोसा नहीं किया। (२५) पटु = वस्त्र। भखु = भोजन। परेई = कबूतरी। परेवा = कबूतर। पुहुमि = पृथ्वी।

मतिराम

(मतिराम ने सरल भाषा में सौंदर्य और प्रेम के मार्मिक चित्र खींचे हैं। सौंदर्य और बारीक से बारीक भंगिमा तथा प्रेम की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति को उन्होंने बड़े सहज भाव से उतार दिया है।)

(१) लोल = चंचल। लुनाई = सुन्दरता, लावण्य नमकीन (मीठी लगै अँखियान लुनाई' में विरोधाभास है)। (२) नेरे = नजदीक। निकाई = सौंदर्य। (५) देवतिया-सी = देवांगना अथवा देव-पत्नी सदृश। निरबात = जहाँ हवा न हो। (५) बंजुल = बेंत। ससुरारि = ससुराल। (७) बीथिन = गलियाँ। होत हाँतो ना = दूर तो होता ही नहीं।

देव

(रीति-विशेष से मुक्त होते हुए देव ने सौंदर्य और प्रेम का मनोहर चित्रण किया है। ऋतु वर्णन में उन्होंने नाद सौंदर्य द्वारा चित्रण को जीवंत बना दिया है।)

(१) ब्रज दूलह = ब्रज के दूल्हा (श्रीकृष्ण)। (२) कर तारी दै = हाथ से ताली बजा कर। उतारो करै = नजर उतारने के लिए माताएँ राई और नमक बच्चे के ऊपर उतार कर (चारों तरफ घुमाकर) डाल देती हैं, इसी को उतारा कहते हैं। चटकारी दै = [illegible]। (इसमें [illegible])। (३) इस छंद में स्वप्न में कृष्ण-दर्शन का चित्र है। (४) यहाँ नायिका में ही वृंदावन-वास दिखाया गया है। विरहिनी में पंचतत्वों में से केवल आकाश तत्व रह गया है। तनुता = दुबलापन। (५) नैनन में तिमिर = आँखों में अँधेरा। छंद का भाव यह है कि नायिका ने श्रीकृष्ण के रूप को तन-मन में बसा लिया है। (६) इस छंद में चन्द्रिका का वर्णन है। [illegible] = [illegible] हो [illegible]। [illegible] = दीवार। मल्लिका = चमेली।

घनानंद

(घनानंद ने रूप-चित्रण में रूप के प्रभाव-चित्रण पर अधिक बल दिया है। उन्होंने शृंगार चित्रण में वियोग वर्णन को प्रधानता दी है। पर यहाँ भी उनका बल अंतर्वृत्ति निरूपण पर अधिक है। वियोग में वैसे भी व्यक्ति अंतर्मुख हो जाता है।)

(१) जलज = शंख (कंठ शंख के भीतरी भाग के सदृश्य हैं)। (२) बानि = आदत। वार्‌यौ = निछावर कर दिया। सु तो = वही तो। (३) अवरेख्यौ = अंकित किया। (४) अभागिनि भीरौ = मैं अपने दुर्भाग्य से भिड़ूँ। (५) बाँट = हिस्सा। उराहनो = उलाहना। चाड़ = उत्कंठा। (६) लरिकाई... = इस छन्द में कवि ने जीवन का रात्रि के रूप में वर्णन किया है। प्रदोष = संध्याकाल। टोड़ लग्यौ = खेल कूद में बिता दिया। विषै = विषय। भोग = विलास। तमी = रात्रि। धुंधर्‌यौ = धुन्ध (माया से आच्छन्न)। भोर भयौ = सवेरा हो गया। (भाव यह है कि वृद्धावस्था के उज्ज्वल वेग आने के प्रभाव का संकेत दे रहे हैं। जड़ जीव सवेरा होने पर भी तू जागता नहीं है)।

पद्माकर

(इन पदों में पद्माकर ने ऋतु वर्णन के परिवेश में सहज प्रेम का चित्रण किया है। ऋतु वर्णन के चित्र अपने आप में भी पूर्ण और रम्य हैं।)

(१) औरै भाँति = वसन्त के आगमन से प्रकृति में और लोगों के मन में अकस्मात् अद्भुत परिवर्तन आ गया। (२) चलाकैं = चलाका का बहुवचन, बिजली। चरजि गई = कौंध गई। लरजि गई = झूम गई। तरजि गई = ताड़ना दे गई। वियोगावस्था में वर्षा ऋतु दुःखदायी हो रही है। (४) नाई = उँडेल दी। मीड़ि = पल दी। अभीरन = अहीरों। भाई करी मन की = मनमानी की। (५) थोक = समूह। अगर = अगरू। फबि रहे = शोभायमान हो रहे हैं। झालि रहे = फैल रहे हैं।

मैथिलीशरण गुप्त

(क) यशोधरा का विरहगीत

(यह गीत मैथिलीशरण गुप्त के खंडकाव्य 'यशोधारा' से सकलित है। यहाँ कवि ने यशोधरा के विरह वर्णन के माध्यम से ऋतु वर्णन की पुरानी परिपाटी का निर्वाह भी किया है। ग्रीष्म से लेकर वसन्त तक सभी ऋतुओं के क्रमिक वर्णन के द्वारा कवि ने यशोधरा की बदलती हुई मनोदशाओं का मार्मिक अंकन किया है।)

तप मेरे मोहन का = मेरे मोहन (भगवान बुद्ध) का तप।

भाव यह है कि ग्रीष्म में जो धूल भरी लू चल रही है वह मानो मेरे मोहन (बुद्ध) का तप ही है। 'मोहन' और 'उद्धव' के पौराणिक प्रसंग से दूसरा अर्थ भी व्यंजित है। मेरा ताप और तप उनका = यहाँ 'ताप' और 'तप' का चमत्कार दृष्टव्य है। बुद्ध के 'तप' और यशोधरा के (विरह) 'ताप' का सम-

न्वित प्रभाव इतना प्रखर है कि यह जर्जर (दृढ़, कठोर) पृथ्वी भी जली जा रही है। शतधा=सैकड़ों रूपों में, सैकड़ों धाराओं में। हेमपुंज=स्वर्णराशि। गारुँ=मलाऊँ।

(ख) सीता का उटज गीत

(यह गीत गुप्त जी के प्रबंध काव्य 'साकेत' से संकलित है। राम वन गमन के बाद राजा जनक तो राजभवन में कुटी बना कर रहने लगे थे जब कि सीता ने कुटी में ही राजभवन पा लिया है। पूरी कविता में इसी भाव को पल्लवित किया गया है। कवि ने सीता के माध्यम से आधुनिक नारी-मन की आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त किया है।)

उटज=कुटी, पर्णकुटी। सौध=चूने से पुता हुआ पक्का मकान, महल। प्राणेश=प्राणों के ईश, पति (राम)। परिखा=किले के चारों ओर की खाई। औरों के आगे झलती हूँ=इस अंश में आधुनिक नारी स्वातंत्र्य और श्रम की महत्ता का संकेत है। व्यजन=पंखा। तनु लता ····पाया=शारीरिक श्रम का आनंद आज ही ज्ञात हुआ। जिनसे····पाते हैं=जिनको देखकर मेरे प्रिय (राम) के प्रेमी ये प्राण बनवास के दुःखों से छुटकारा पा जाते हैं। झिला करते हैं=झिलमिलाते हैं। जाया=पत्नी। कोटर=पेड़ के तने का खोखला भाग। प्रेय-श्रेय=प्रिय और हितकर। कुरंग=हिरन। दिवि=नीलकंठ। चटक=गौरैया पक्षी। कलापि=मोर। अँकोर=भेंट।

(ग) नहुष का पतन

(यह अंश 'नहुष' खंड काव्य से संकलित है। वृत्रासुर के वध करने के कारण इंद्र को ब्रह्म हत्या का पातक लगा और उन्हें इंद्रासन छोड़ना पड़ा। वृहस्पति के निर्णयानुसार नहुष को इंद्रासन का पद मिला। नहुष इंद्राणी पर मोहित हो गए। वृहस्पति की सलाह से इंद्राणी ने कहला भेजा कि यदि आप सप्तर्षियों के कंधों पर पालकी में आएँ तो मुझे प्रस्ताव स्वीकार है। कामार्त नहुष ने यही किया। पालकी में बैठे हुए उन्होंने सप्तर्षियों को आदेश दिया 'सर्प, सर्प'—अर्थात् 'जल्दी करो, जल्दी करो' और क्रोध में पैर पटकने से उनका पैर एक ऋषि को जा लगा। इस पर क्रोधित होकर अगस्त्य ने शाप दिया—'जा मूर्ख, सर्प हो जा।' नहुष ने शाप स्वीकार किया, इस आस्था के साथ कि फिर उठेंगे। मानवीय दुर्बलताएँ मनुष्य को बार-बार नीचे ले आती हैं लेकिन मानवीयता गिर-गिरकर उठने में है, पराजय न मानने में है।)

आरोही=सवार, यहाँ नहुष। भार=काम। क्रोधानल=क्रोध की अग्नि। पामर=नीच। पीकर····पीना साँप=कहा जाता है पीना साँप सोते हुए मनुष्य की साँसें पीता है, पीने के बाद पूँछ प्रहार से उसे जगाकर चल देता है। जागने पर मनुष्य बेहद विकलता का अनुभव करता है क्योंकि साँप मनुष्य के कंधों

द्वारा ही उसमें अपना विष पहुँचा देता है। अंगीकार्य = स्वीकार्य। दंदशूक = सर्प। गोत्रिणी = पृथ्वी। बहिर्गता = दूर होकर भी। मुक्तोज्झित = खाने से बचा हुआ, उच्छिष्ट। अपवर्ग = मोक्ष, निर्वाण। मेरी देवता = मेरी देव प्रजा।

जयशंकर प्रसाद

(क) हमारा देश

(यह गीत प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' से संकलित है। देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत इस गीत में भारतवर्ष के प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा भावात्मक सौंदर्य का कलात्मक अंकन है।)

अरुण = पूर्व में स्थित जहाँ ज्ञान का अरुण आलोक सबसे पहले फैलता है। जहाँ पहुँच " सहारा = क्षितिज को सहारा मिलने में देश के भौगोलिक विस्तार तथा शरणागत वत्सलता का संकेत। सरस तामरस ·····कुंकुम तारा = उल्लास और प्रेम का संकेत। भाव यह है कि मंगलमय कुमकुम के समान सूर्य की अरुणिमा कमल के पराग-कोष पर, नाचती हुई तरु-शिखाओं पर और जीवन रूपी हरियाली पर छिटकी हुई है। लघु सुरधनु ·····सहारे = पंक्ति की लय में आकाश में उड़ते हुए पक्षियों का बिम्ब मूर्तिमान हो उठा है। बरसाती आँखों ···· करुणा-जल = करुणामयी संस्कृति का संकेत। हेम कुम्भ ···· रजनी भर तारा = जब और लोग अज्ञान के अँधकार में सोए पड़े रहते हैं तब उषा रूपी सुंदरी सूर्य रूपी सोने के घड़े को भर-भरकर सुनहरी किरणों के रूप में सुख की वर्षा करती है।

(ख) आँसू

(ये छंद प्रसाद जी की पहली विशिष्ट रचना 'आँसू' से संकलित है। यह एक गीतिकाव्य है, जिसमें व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रकाशन पर बल रहता है। अतीत-प्रेम की स्मृतियों की पीड़ा द्रवीभूत होकर कवि के आँसुओं के रूप में बह निकली है। आभ्यंतर प्रेम की इस पीड़ा को कवि ने लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शब्दावली में व्यक्त किया है।)

(ग) श्रद्धा का गीत

(यह गीत 'कामायनी' के 'निर्वेद' सर्ग से संकलित है। इस आस्थामूलक गीत के माध्यम से श्रद्धा घायल मनु को सान्त्वना देती है। श्रद्धा मन की रागात्मिका वृत्ति की प्रतीक है जिसकी छाया में जीवन के कोलाहल से थका हुआ मनु (मनुष्य) नई स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। गीत के हर पद में दो विरोधी बिम्बों को साथ-साथ रखा गया है एक ओर बौद्धिक जीवन के कोलाहल से उत्पन्न दुःख, निराशा और पस्ती को सूचित करनेवाले बिम्ब हैं और दूसरी ओर आशा, उल्लास और जीवन में आस्था जगानेवाले।)

(ब) श्रद्धा का सौन्दर्य

(प्रस्तुत अंश 'कामायनी' के 'श्रद्धा' सर्ग से संकलित है। श्रद्धा का रूप चित्रण 'कामायनी' के मार्मिक प्रसंगों में से है। इस चित्रण की विशेषता यह है कि इसमें श्रद्धा के बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ आंतरिक सौन्दर्य की व्यंजना भी है। कवि का ध्यान नारी के अतीन्द्रिय और वायवी रूप पर अधिक है, फलतः उसमें विमुग्धता और कुतूहल का स्वर अधिक मुखर है।)

मसृण=चिकने। मेषों=मेढ़ों। वर्म=कवच। नील परिधान···· रंग=यहाँ नील परिधान को मेघ के समान बताया गया है और उस परिधान से झाँकते हुए देदीप्यमान अधखुले अंगों को 'बिजली के फूल' की तरह। 'बिजली के फूल' में दीप्ति के साथ-साथ अतीन्द्रियता का संकेत। आह वह मुख ···· अशांत=नील आवरण में लिपटी श्रद्धा के मुख के सौंदर्य को कवि ने छाया और प्रकाश के विरोधी बिम्बों के द्वारा मूर्तित किया है: काले बादलों के बीच चमकता हुआ अरुण सूर्य और रात्रि के अंधकार को भेद कर फूटता लघु ज्वालामुखी दोनों ही चित्रों में यह विरोध द्रष्टव्य है। अंस=कंधा। और उस मुख···अभिराम=श्रद्धा के मुख पर मुस्कान ऐसी लग रही थी मानो लाल किसलय (होठ) पर प्रभात-कालीन सूर्य की कोई किरण (मुस्कान) विश्राम कर रही हो। उषा की····· कोर=यहाँ श्रद्धा को उषा की पहली किरण के समान बताया गया है। कुसुम कानन=यहाँ श्रद्धा को सुविकसित सौरभ कहा गया है। ये सभी उपमान श्रद्धा के अतीन्द्रिय रूप पर बल देते हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(क) वसंत गीत

(यह गीत निराला के 'गीतिका' कविता-संग्रह से संकलित है। कवि ने वसंत के चित्रण के बहाने जीवन के उल्लास को अभिव्यक्त किया है। यह गीत जीवन-जगत् के सौन्दर्य में कवि की गहरी अभिरुचि को व्यक्त करता है।)

लता···· भर=लताओं ने सुगंधपूरित कलियों का हार पहन रखा है। जागी···· माया=वन-प्रान्तर के सौन्दर्य की मादकता का असर लोगों के नयनों में भी व्यक्त होने लगा है। आलुल ···· छूटे=यहाँ कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य को नारी-सौन्दर्य में बाँधा है। तरुणी के हृदय के उगे हुए कमल खिल उठे जिससे कली-कली के केसर रूपी केश उन्मुक्त हो गए।

(ब) बादल राग

(निराला की यह कविता 'परिमल' नामक कविता-संग्रह से संकलित है। बादल क्रांति का 'विप्लव' का प्रतीक है, जिसके आने से बड़े-बड़े पूँजीपति तो

दहल जाते हैं, किन्तु साधारण जन उल्लसित होते हैं। इसीलिए जीर्ण-शीर्ण कृषक अधीर होकर उसे बुलाता है। कवि का संदेश है कि सामाजिक क्रांति से साधारण जन लाभान्वित होगा, उसका महत्त्व बढ़ेगा—'विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते'।)

तिरती है ····भरी आकांक्षाओं से=जन-मन की आकांक्षाओं से भरी तेरी (बादल की) नाव समीर रूपी सागर में तिर रही है। 'दग्ध' और 'विप्लव' शब्दों पर कवि का बल है: जग के दग्ध ··· ऐ विप्लव के बादल=आशय यह है कि धरती के दाह को विप्लव ही शांत कर सकता है। अशनिपात ····वीर=विप्लव की बिजली के सामने शोषक वर्ग के बड़े-बड़े मठाधीश क्रांति के उद्घोष से धराशायी हो जाते हैं। हँसते हैं ····लघु भार=साधारण जन इस क्रांति के आने से प्रसन्न हैं। विप्लव रव ···पाते=क्रांति से दलित। और शोषित वर्ग लाभान्वित होता है। अट्टालिका ····भवन=ये अट्टालिकाएँ नहीं है, आतंक-भवन हैं। यहाँ पंक शब्द पूँजीपति वर्ग के लिए है और जलज दलित वर्ग के लिए। रुद्ध कोष=संपन्न पूँजीपति वर्ग। अँगना अंग ····काँप रहे हैं=पूँजीपति अपनी पत्नियों के अंक से दुबके हुए भी बादल के आतंक से काँप रहे है।

(ग) ध्वनि

(यह कविता भी 'परिमल' काव्य-संग्रह से संकलित है। कवि ने बसंत के माध्यम से जीवन के प्रति ऐसी अदम्य लालसा व्यक्त की है, जिसमें मृत्यु का नामोनिशान नहीं, जीवन ही जीवन है।)

अभी-अभी·····बसंत=अभी-अभी तो मेरे जीवन में नवयौवन रूपी बसंत का पदार्पण हुआ है। प्रत्यूष=प्रभात।

(घ) गहन है यह अंधकारा

(यह कविता 'अनिमा' काव्य-संग्रह से संकलित है। यहाँ कवि ने स्वार्थ-जनित निराशा व्यक्त करते हुए नव चेतना की आकांक्षा व्यक्त की है।)

अवगुंठन=अवरोध, घूँघट। लुंठन=पतन, पद-दलन।

(ङ) फागुन की आशा

(यह कविता 'अर्चना' कविता-संग्रह से संकलित है। कवि ने फागुन की प्राकृतिक शोभा और मन पर उसके प्रभाव का मार्मिक अंकन किया है। कवि इस सौंदर्य से इतना अभिभूत है कि इसे सहज नहीं पा रहा है।)

सुमित्रानंदन पंत

(क) पर्वत पर पावस

(यह कविता 'पल्लव' से संकलित है। वर्ड्सवर्थ की तरह पंत जी को 'प्रकृति का कवि' कहा जाता है। यहाँ कवि ने पावस ऋतु में पर्वत के सौंदर्य का चित्रण किया है। पूरी कविता में दो बिम्ब मुख्य रूप से उभरते हैं—जल-क्रीड़ा करते हुए हाथी का और पावस-सुंदरी का। पावस के इस सौंदर्य का स्मरण करके कवि का भावुक मन सहज ही चंचल और उदास हो उठता है।)

द्विरद दंत=दो दाँतों वाला, हाथी। कर सीकर=सूँड़ से फेंके गए जलकण। भूति=हाथियों के आभूषण। परिकर=हाथी का झूल। विशिख=तीर, वर्षा की तीखी धार। ऐंचीला=वक्र।

(ख) संध्या के बाद

(यह कविता 'ग्राम्या' से संकलित है। अपने कवि-जीवन के दूसरे चरण में पन्त जी प्रगतिशील विचारों की ओर आकर्षित हुए। 'ग्राम्या' की कविताओं में इन्हीं विचारों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है। इस कविता में कवि ने संध्याकालीन ग्राम्य-प्रकृति और जन-जीवन को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है। पूरी कविता सहज मानवीय करुणा के अनुप्राणित है।)

जिह्म=अजगर, साँप। विश्लथ=क्लांत, थका हुआ। ज्वलित कलश=सूर्य। नीरांजन=आरती। द्वाभा=संध्या का प्रकाश। विषण्ण=दुःखी। प्रदोष=रात्रि का प्रथम प्रहर। कथरी=चिथड़ों से बना ओढ़ना-बिछौना, गुदड़ी।

महादेवी वर्मा

(क) मैं नीरभरी दुख की बदली

(यह कविता महादेवी वर्मा के कविता-संग्रह 'सांध्यगीत' से संकलित है। यहाँ कवयित्री ने बदली को आत्मा और नीर को प्रेम का प्रतीक माना है। कवयित्री चिर विरह में लीन रहते हुए भी अपने प्रेम को निरंतर बाँटते रहना चाहती है, किन्तु उसके मन में प्रतिदान की कोई कामना नहीं है। इस गीत के आधार पर महादेवी जी को प्रायः पीड़ावादी-पलायनवादी कवयित्री कहा जाता है।)

दुकूल=रेशमी वस्त्र। निर्झरणी=नदी।

(ख) पंथ होने दो अपरिचित

(यह गीत 'दीपशिखा' कविता-संग्रह से संकलित है। प्रतीक रूप में दीपक कवि की अपनी आत्मा—मानव-आत्मा का प्रतीक है। निराशा और विषाद का जो स्वर हमें 'यामा' ('नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत') में मिलता है वह 'दीपशिखा' में नहीं। यहाँ आस्था का स्वर अपेक्षाकृत अधिक प्रखर है। इस गीत में भी कवयित्री के अपराजेय मन को मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है।)

और होंगे ····रूखे=ये नेत्र कोई दूसरे ही होंगे जिनका स्नेह रिक्त हो चुका है और जिनकी पुतलियों का तेज नष्ट हो गया है। आर्द्र ··· खेला=स्नेह से भीगी मेरी इन आँखों में तो शत-शत बिजलियों का तेज विद्यमान है। भाव यह है कि जब तक इस प्राणदीपक में स्नेह विद्यमान है तब तक जीवन की यह विभीषिका मुझे आतंकित नहीं कर सकती। दुखव्रती=मेरे इन प्राणों ने तो दुःख का व्रत लिया है। निर्माण उन्मद=बड़े उत्साह के साथ रचनात्मक साधना में लगे हुए हैं—जीवन के नवनिर्माण के उत्साह में चूर हैं। बाँध देंगे ··· खेला=मेरे ये चरण तब तक निरन्तर आगे बढ़ते रहेंगे जब तक अंधकार के बाद प्रभात के प्रकाश का उदय न हो जाए। आज जिस पर·····एक मेला=मेरी इस प्रणय कथा का अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि विरह के कारण मेरी इन आँखों से अग्नि के स्फुलिंग निकल रहे हैं। मेरी इस अनंत विरह ज्वाला को देखकर और आँसू रूपी मोतियों के अक्षय कोष को देख कर स्वयं प्रकृति भी आश्चर्यचकित है। हास ···· सहेजो=यहाँ वसंत को 'हास' और पतझड़ को 'भ्रूभंग' (क्रोध का प्रतीक) बताया गया है। ले मिलेगा····· शतदल=मेरा हृदय एकनिष्ठ भाव से, वेदना के जल में स्वप्न के कमल लेकर, तुम्हारी अभ्यर्थना करेगा—तुम्हें अर्घ्य देगा। जान लो····· दुकेला=मेरे हृदय की अजीब स्थिति है—मिलन के क्षणों में यह अकेलेपन का अनुभव करता है और विरह के क्षणों में संयोग का।

(ग) सब आँखों के आँसू उजले

(यह गीत भी 'दीपशिखा' से संकलित है। संसार में दुख और सुख दोनों का पृथक् रूप है, पृथक् अस्तित्व है लेकिन उनकी मूलवर्ती भावना एक ही है, इस बात को कवयित्री ने विरोधी बिम्बों को साथ-साथ रखकर व्यक्त किया है।)

जिसने=जिस परम सत्ता ने। जिसने उसको ···· फूल जला=यहाँ दीप और फूल का वैषम्य दिखाया गया है। दोनों एक ही उद्देश्य की सिद्धि करते हैं किन्तु दोनों के स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं—एक की प्रकृति है जलना, दूसरे की खिलना। वह अचल ····बदला=यहाँ पर्वत और सागर का वैषम्य चित्रित है।

नभ सारक ···· पिघला = यहाँ हीरे और सोने का वैभव्य दिखाया गया है। नीलम ···· जीवन मोती = नीलम अर्थात् आकाश और मरकत अर्थात् पृथ्वी। यह संसार एक सीप के समान है, आकाश और पृथ्वी इसके दो संपुट हैं। संसृति के ····· तुम लो = इस भूमि के प्रत्येक अंश में मेरी ही साँसें बसी हुई हैं। जलते····· हला = इस संसार में मनुष्य का चैतन्य ही नाना रूपों में प्रस्फुटित होता रहता है—कहीं दीपक के समान जलते हुए, कहीं फूल के समान खिलते हुए और कहीं निर्झर के समान बहते हुए।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

(क) कस्मै देवाय

(कवि चारों ओर व्याप्त सामाजिक आतंक, अत्याचार तथा शोषण को देखकर क्षुब्ध है। वह अपनी कविता से यह प्रार्थना करता है कि इन अत्याचारों से मुक्ति दिलाए, क्योंकि उसकी धारणा है कि केवल कविता में ही वह शक्ति है। अन्य कोई देवी-देवता इस कार्य को नहीं कर सकता।)

ज्योति-वीर = महापुरुष। कृषक-मेध = वह यज्ञ जिसमें किसानों की बलि दी जाती है। क्रौंच = एक प्रकार का पक्षी जिसके वध को देखकर बाल्मीकि के हृदय से कविता फूट पड़ी थी। अनुचर न वाष्प हो = वाष्प और विद्युत शक्ति भले ही उपलब्ध न हो। नभ के पंख = वायुयान। तमसा = एक छोटी नदी जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बेतिया (बिहार) के पास गंगा में मिलती है। राम ने वनवास जाते समय पहला पड़ाव इसी के किनारे किया था। नीवार = जंगली धान। इंगुदी = एक प्रकार का तेल। हिरण्यगर्भः ····विधेमः = जो समस्त प्रकाश का स्रोत है, जो सब जगत के उत्पन्न होने से पूर्व ही उसके स्वामी के रूप में वर्तमान था, वही इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है; हम उस सुख स्वरूप परमात्मा की आत्म-समर्पण द्वारा उपासना करें।

(ख) चाँद और कवि

(कविता में चाँद और कवि का वार्तालाप है, जिसमें चाँद मनुष्य की भावुकता और कल्पनाजीवी प्रकृति पर व्यंग्य करता है। लेकिन कवि की रागिनी (वाणी) मनुष्य की सपनों की शक्ति और उन्हें साकार करने में मनुष्य की क्षमता का उल्लेख कर इस व्यंग्य का उत्तर देती है।)

(ग) जनतंत्र का जन्म

(इसमें कवि ने राजतंत्र के विरुद्ध लोकतंत्र का स्वागत किया है। खेतों, खलिहानों तथा कारखानों में काम करने वाली जनता ही सिंहासन की सच्ची

अधिकारी है, उसे अब राजशाही के जाल में नहीं फँसाया जा सकता, यही भाव पूरी कविता में व्यक्त हुआ है।)

अब्दों=वर्षों। गवाक्ष=झरोखे, खिड़कियाँ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय'

(क) नदी के द्वीप

(यह कविता अज्ञेय के 'काव्य संग्रह' 'बावरा अहेरी' से ली गई है। यह एक प्रतीकात्मक कविता है जिसमें व्यक्ति, समाज और परंपरा के पारस्परिक संबंधों को नवीन दृष्टि से देखा गया है। यहाँ द्वीप व्यक्ति का, नदी परंपरा (काल) का और भूखंड समाज का प्रतीक है। समाज और व्यक्ति को मिलाने वाली परंपरा ही है, जिस प्रकार द्वीप भू का एक खंड है, किन्तु नदी के कारण उसका पृथक् अस्तित्व है उसी प्रकार व्यक्ति भी समाज का अंग है किन्तु काल (परंपरा)-प्रवाह के कारण उसका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी बन जाता है। कवि का सन्देश है कि समाज से व्यक्ति को संस्कार ही प्राप्त करना है, उसमें अपने आपको मिटा नहीं देना है, वरन् नई-नई संभावनाओं को जन्म देना है।)

स्रोतस्विनी=नदी, परंपरा प्रवाह का प्रतीक। हम को छोड़कर वह जाए=हम सामाजिक परंपरा से अछूते रह जाएँ। हमारे कोण·····गढ़ी हैं=व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक विशिष्टताएँ परंपरा-प्रवाह से ही निर्मित हुई हैं। द्वीप बनने की पूरी प्रक्रिया बताकर कवि ने एक छोटे-से भावचित्र को व्यापक आधार प्रदान किया है। स्थिर समर्पण है। हमारे सामाजिक जीवन से व्यक्तित्व को संस्कार ही प्राप्त करना है, अपने स्वतंत्र अस्तित्व को सदा के लिए विलय नहीं कर देना है। प्लावन=बाढ़। नियति=भवितव्य. प्राप्य। क्रोड=गोद। भूखण्ड=पृथ्वी, प्रतीकार्थ, समाज। दाय=समाज से उत्तराधिकार में प्राप्त। स्वैराचार=मनमानापन। यदि ऐसा कभी·····वह भी=किसी के स्वेच्छाचार या अत्याचार से या तुम स्वयं अपनी प्रसन्नता के लिए विनाशकारी रूप धारण कर लो तो वह भी हमें स्वीकार है। संस्कार तुम देना=हमारे व्यक्तित्व को फिर संस्कार अर्थात् वैशिष्ट्य प्रदान करना।

(ख) चाँदनी जी लो

(यह कविता अज्ञेय के कविता-संग्रह 'बावरा अहेरी' से ली गई है। कवि शरद-चाँदनी के सौन्दर्य और उसके प्रभाव का मार्मिक अंकन करता है और चाँदनी रात के उन क्षणों को आत्मसात करने की प्रेरणा देता है। कविता रोमांटिक भाव-बोध का उत्कृष्ट उदाहरण है।)

चाँदनी जी लो=चाँदनी के आनंद में पूरी तरह रम जाओ। अँजुरी भर पी लो=तृप्त होने तक पूरा आनंद लो। सरसी=छोटा सरोवर। अनझिप=अपलक। कुमुद ताकते=चाँदनी में कुमुद खिल जाते हैं। झिपते=स्पष्ट दिखाई नहीं देते। सीठी=धूमिल। मीठी लालसा=मधुर कामना। ढिग=पास। पाहुन=अतिथि। अंतःस्पंदन जी लो=मेरे हृदय की भावनाओं के अनुरूप तुम भी प्रतिक्षण अनुभव करो।

(ग) हवाई यात्रा : ऊँची उड़ान

(यह कविता 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' काव्य-संग्रह से ली गई है। इस कविता में कवि ने हवाई यात्रा के वस्तुपरक अंकन के साथ-साथ नगर-सभ्यता पर व्यंग्य किया है। भौतिकवादी सभ्यता में यथार्थबोध पीछे छूट जाता है और हम चीजों को अपने वास्तविक रूप में नहीं देख पाते। वास्तविकता का अनुभव तो यथार्थ की ठोस जमीन पर ही आकर होता है। तभी हम उस नर को पहचान सकते हैं जिसकी भावमय आँखों में नारायण (ईशु) की व्यथा विद्यमान रहती है।)

स्वप्न मसृण=स्वप्न की तरह कोमल। अवतंस=आभूषण। उद्यम की कीर्ति पताका=मनुष्य के उद्यम का फल। रासायनिक ···· पनप रहा है=इस नए वैज्ञानिक युग की जीवनचर्या के प्रति कवि का आक्रोश। खड़ा मिलेगा ··भरी है=पृथ्वी पर तुम्हें नाना प्रकार की व्यथाओं से पीड़ित मनुष्य मिलेगा जो ऊपर ऊपर से देखने पर तुम्हारी ही तरह मनुष्य अवश्य है, लेकिन उसकी आँखों में नारायण (ईशु) की व्यथा भरी हुई है।

नागार्जुन

(क) बादल को घिरते देखा है

(यह कविता नागार्जुन के कविता-संग्रह 'युगधारा' से संकलित है। कविता शुद्ध प्रकृति-चित्रण का उत्कृष्ट उदाहरण है। वर्षा ऋतु आने पर सारी प्रकृति-जैसे अपनी विरहाग्नि शांत करती नजर आती है, इस भाव को कवि ने विविध बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। पावस की उमस को शांत करते हुए हंस, चकवा-चकई का प्रणय कलह, हिमालय की गोद में विचरते हिरण, गगनचुम्बी कैलाश पर महामेघ और झंझानिल का गरज-गरज कर भिड़ना, मृदुल मनोरम उँगलियों को वंशी पर फेरते किन्नर-किन्नरियाँ—ये सभी बिम्ब अपने आपमें आकर्षक तो हैं ही, कविता के संश्लिष्ट प्रभाव को भी गहरा करते हैं। कविता के ध्वनि-संगठन का उदात्त-स्तर 'बादल राग' (निराला) की याद दिलाता है।)

तुहिन कण=फुहार। बिसतन्तु=कमलनाल। विरहित=अलग-अलग। प्रणय-कलह=प्रेम-लीला। अलख नाभि=अज्ञात नाभि। धावित हो-होकर=

दौड़-दौड़कर। अलका = यक्ष नगरी। व्योम प्रवाही = आकाश गंगा। झंझानिल = झंझावात। शोणित = लाल। कुन्तल = केशपाश। कुवलय = नीलकमल। पान पात्र = मधु पात्र। द्राक्षासव = अंगूरों से बनी मदिरा। त्रिपदी = तिपाई। नरमनिदाग = नरम और दाग रहित।

(ख) बहुत दिनों के बाद

(यह कविता भी 'युगधारा' कविता-संग्रह से ले ली गई है। कवि एक लम्बे अर्से के बाद अपने चिर-परिचित ग्राम्य अंचल में लौटा है और अपूर्व आनंद तथा परितोष का अनुभव करता है। इस उल्लास को कवि ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पाँच बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। पूरी कविता जीवन-जगत् के सौन्दर्य में कवि की गहरी दिलचस्पी को व्यक्त करती है।)

ताजे-टटके = एकदम ताजा।

(ग) अकाल और उसके बाद

(यह कविता 'सतरंगे पंखों वाली' संग्रह से ली गई है। कवि अकाल और अकाल के बाद की दो विरोधी स्थितियों को दो बिम्बों के माध्यम से चित्रित करता है। पहली चार पंक्तियों में अकाल की करुण उदासी का चित्रण हुआ है, अंतिम चार में घर में दाने आ जाने से उत्पन्न आशा और उल्लास का। विरोधी बिम्बों का साथ-साथ आना भावोत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुआ है।)

शिकस्त = हार।

मुक्तिबोध

(क) मुझे कदम-कदम पर

(यह कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य-संग्रह से संकलित है। यहाँ कवि ने आज के रचनाकार के संकट को व्यक्त किया है। आज के रचनाकार का संकट यह नहीं है कि उसके पास विषयों की कमी है, वरन् यह है कि उसके चारों ओर इतनी ज्यादा सामग्री है कि उसमें से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है। और सही चुनाव न कर पाने की असमर्थता ही कठिनाइयाँ पैदा करती है।)

चौराहे मिलते हैं = ऐसी स्थिति जहाँ मार्ग निश्चित नहीं हो पाता। बाँहें फैलाए = प्रत्येक मार्ग आकर्षक लगता है। सुस्मित = मुस्करानेवाले में। सदा नीरा = नदी, जिसमें हमेशा जल रहे। स्वायत्त = स्वशासन। सूरे व आयते = कुरान के दो प्रकार के छंद।

(ख) एक पागल का गीत

(यह कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में ही संग्रहीत 'अँधेरे में' शीर्षक लम्बी

कविता का एक अंश है। इस महाकाव्यात्मक कविता में कवि ने 'आज के व्यापक संदर्भ में जीनेवाले व्यक्ति' की अस्मिता को खोजने की कोशिश की है। यहाँ कवि ने एक पागल के गीत के माध्यम से अपने आदर्शवादी मन पर व्यंग्य किया है।)

उदरम्भरि = पेट भरना ही जिनके जीवन का लक्ष्य है। अनाथ = अनाथवत। तलधर = तहखाना। हंकाल = दुत्कार दिया। टेरियर = शिकारी कुत्ते की एक जाति। बघार = छौंक लगाना। जम गए" हमारी = [illegible] नष्ट हो गई है, स्वार्थों में फँसकर हम जीवन के आदर्श और हृदय की उदारता खो बैठे हैं।

रघुवीर सहाय

(क) धूप

यह कविता 'सीढ़ियों पर धूप' से संकलित है। कवि ने वसंत की धूप के कुछ ऐसे चित्र खींचे हैं जिनकी ओर सहसा हमारा ध्यान नहीं जाता। कवि धूप के उस सौंदर्य का अनुभव तो करता है, किन्तु उसे व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। फलतः वह हरे-हरे पौधे, गुलाब, गौरैया के बिम्बों द्वारा हल्की-हल्की धूप के इस प्रभाव को संवेदना के स्तर पर व्यंजित करता है।

धूमिल

मोचीराम

(यह कविता धूमिल के कविता-संग्रह 'संसद से सड़क तक' से संकलित है। मोचीराम आम आदमी का प्रतीक है जो आधुनिक जीवन के व्यवसायीकरण का शिकार है। इस व्यावसायिक वृत्ति ने मनुष्य को मात्र खरीद-फरोख्त की वस्तु बना दिया है। कवि को ऐसे आम आदमी की तलाश है जो रंग-जाति-भाषा आदि के उभरे भेद से परे है। मोचीराम के माध्यम से कवि ने एक 'ठोस मानव स्थिति' को कविता का विषय बनाया है।)

राँपी = चमड़ा काटने-छीलने में काम आनेवाला मोची का औजार। पतियाए हुए = विश्वास से परिपूर्ण। हर आदमी ..... खड़ा है = हर आदमी को मैं व्यावसायिक दृष्टि से ही देखता हूँ। कोई आदमी .... टाँके पड़ते हैं = मैं यह जानता हूँ कि इस व्यावसायिकता से कोई मुक्त नहीं है, फिर भी इस व्यावसायिकता से मुक्त मानवता कहीं-न-कहीं दिख ही जाती है, जिसपर रोज आघात पहुँचता है। उम्मीद को तरह देती हुई हँसी = निराशापूर्ण हँसी। बिसूरता है = कातर दृष्टि से देखता है।

मु० इक़बाल

(क) परिन्दे की फ़रियाद

(इस कविता में पिंजरबद्ध पक्षी का आर्तनाद है। पिंजरे में पक्षी को मुक्त-जीवन की स्मृतियाँ भाव-विभोर कर देती हैं। अतः उसका जिह्वा विहीन बंदी पक्षी अपनी मुक्ति की प्रार्थना करता है।)

क़फ़स=पिंजरा। सदा=आवाज़। आशियाना=घोंसला।

(ख) नया शिवाला

(इस कविता में नए शिवाले के निर्माण का अनूठा संदेश दिया गया है। पुराने मंदिर लड़ाई-झगड़े की बातें करते हैं। इस कविता में मानवता के एक महान मंदिर के निर्माण की बात कही है जो प्रीत-गीत सुधा जन-मन में प्रवाहित कर दे। जिस मानव मंदिर की सीमाएँ देश-देश की सीमाओं के पार विश्वव्यापी हों।)

सनमक़दा=मूर्ति-मंदिर। जंग-ओ-जदल=लड़ाई-झगड़ा। वाइज़=उपदेशक। ग़ैरियत=परायापन। नक़्शे दुई=द्वैत-चिह्न। दामाने आसमां=आकाश के छोर। मय=शराब।

(ग) मन की दुनिया : सुराग़े ज़िन्दगी

(इस कविता में भौतिक सृष्टि के तन-ओछी जीवन की अपेक्षा मन के पावन संसार की महत्ता का सुन्दर उल्लेख किया गया है। मन की पवित्र सृष्टि में कोई दृष्टिभेद नहीं होता। पावन मन के अंतरतम में ही जीवन-रहस्य का निवास है।)

चरणे लाला=पुष्प दीप। कोह-ओ-दमन=पर्वत-घाटी। नग़मा=गीत। पैरहन=पोशाक। बर्गे-गुल=पुष्प-पंखुरी। बाद=समीर। हुस्ने बेपरदा=प्रत्यक्ष-रूप। सोज़=जलन, दाह। जज़्ब=जज़्बा, भावना। शौक=इश्क़, प्रीति। मक्र=मक्कारी। धोखा फन=कला (धोखे की कला)। सूदोसौदा=भाव-ताव। अफ़रंगी=फिरंगी, अंग्रेज। कलंदर=ईश्वर भक्त, परमहंस।

अली सरदार जाफ़री

(क) मेरा सफ़र

(इस कविता में कवि ने अपनी मृत्यु के बाद भी अपनी अमरता और व्याप्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। पार्थिव रूप में न रहने पर भी कवि मानव की स्नेहिल भावनाओं तथा प्रवृत्ति के विभिन्न सौन्दर्यमय रूप में सदा अमर रहेगा।)

फ़ज़ा=आकाश। बर्गेज़बाँ=जबान की पंखुड़ी। नुत्क़ो सदा=आवाज़। मुश्ते गुबारे इंसां=मनुष्य की मुट्ठी भर राख। दहन=मुँह। सर सब्ज=हरी-भरी। रंगेहिना=मेंहदी का रंग। आहंगे ग़ज़ल=कविता की लय। अन्दाजे

सुखन = काव्य शैली। रुखसारे उरूसे मै = नव दुल्हिन के कपोल। रहरौ = यात्री। गुरेजां = भागता हुआ। लमूहा = क्षण। अय्याम = समय। अफसूँखाना = जादूघर। माजी = अतीत। मुस्तकबिल = भविष्य। मसरूफ़े सफर = यात्रा में व्यस्त।

(ब) हाथों का तराना

(इस कविता में श्रम की महत्ता व्यक्त करते हुए श्रमिकों का आदर और सम्मान करने को कहा गया है। संसार का समस्त ऐश्वर्य और वैभव निर्मित करने वाले श्रमिकों का जीवन बच्चों की तरह निरीह और निश्छल है।)

ताज़ीम = तकरीम, आदर। तारीख = इतिहास। तसलीम = स्वीकार एवं प्रणाम। तमद्दुन = संस्कृति। ऐवान = महल। हसीं = हसीन। खिरमन = खलिहान। जुम्बिश = हरकत। एजाज = चमत्कार। उफक के सयारे = शाम के आकाश के तारे। चारागराने-दर्देजहाँ = दुनिया के दुखों का इलाज करनेवाले। फ़ितरत = स्वभाव। सुबुक = कोमल। जुल्मोसितम = अत्याचार। जंजीरे गिरा = भारी जंजीर। तामीर = रचना।

(स) सुब्हे फ़रदा

(सन् १९६५ के भारत-पाक युद्ध की पृष्ठभूमि पर यह कविता लिखी गई। भारत और पाकिस्तान मूलतः एक ही देश हैं और दोनो देशों के निवासी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के समान उत्तराधिकारी और यथार्थ में एक हैं। राजनीति ने इन्हें बाँट रखा है। कवि हमारी मौलिक एकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए निस्सीम प्रेम का सन्देश देता है। कवि प्रेममयी नयी भोर की प्रतीक्षा करता है।)

शरारा = चिंगारी। सुब्हे फ़रदा = आनेवाले कल की सुबह। मुन्तज़िर = प्रतीक्षा में। आरिज = कपोल। दिलबर = सहृदय। ग़मगुसार = शोकाकुल। सहर = सुबह। खुर्शीदे दरख्शाँ = चमकता हुआ सूरज। पासबाँ = प्रहरी। निगहबानी = रखवाली। पामाल = पददलित। यूरीश = धावा। जर्बकारी = भयंकर चोट, करारी चोट। तेशा = कुदाल। कोहसार = पहाड़। मसर्रत = आनन्द। सोगवार = शोकाकुल। शोला पैकर गुलहजारों = शोलों जैसे आकार और फूलों जैसे चेहरों की प्रेमिकाएँ। दिल अफ़रोज = मनोहारी। बोस-ए-लब = अधर चुम्बन।

तिलक कार्यालय पुस्तकालय
परतापगढ़

———

Five one act plays

4-00

516